

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

दश धर्म भावना

धर्म का स्वरूप दशलक्षण रूप है। इन चिह्ननिकरि अन्तगत धम जानिये है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शोच, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य, ये दश धर्म के लक्षण हैं। जात धर्म तो वस्तु का स्वभाव ही कहिये है। लोक म जेते पदार्थ हैं तितने अपने स्वभाव कू कदाचित नाहीं छाडै है। जो स्वभाव का नाश हो जाय तो वस्तु का अभाव होय, सो होय नाहीं। आत्मा नाम वस्तु का स्वभाव क्षमादिक रूप है अर क्रोधादिक कर्मजनित उपाधि हैं, आवरण हैं। क्रोध नाम धर्म का अभाव होय, तदि क्षमा नाम आत्मा का स्वभाव स्वयमेव रह है। ऐसे ही मान का अभावतैं मार्दवगुण, अर माया के अभावतैं आर्जव गुण, लोभ के अभावतैं शौचगुण इत्यादिक आत्मा के गुण

है ते कर्म के अभावतें स्वयमेव प्रगट होय हैं। तातैं ये उत्तम क्षमादिक आत्मा का स्वभाव है, मोहनीय कर्म के भेद क्रोधादिक कषायनिकरि अनादिका आच्छादित होय रहे हैं। कषाय के अभावतें क्षमादिक स्वाभाविक आत्मा का गुण उघड़ै है। अब उत्तम क्षमा गुणकू वर्णन करे हैं—

उत्तम क्षमा

क्रोध वैरी का जीतना सो ही उत्तम क्षमा है। कैसाक है क्रोध वैरी—इस जीव के निवास करने का स्थान जे समभाव-सन्तोषभाव-निराकुलताभाव ताकू दग्ध करनेकू अग्नि समान, सम्यग्दर्शनादिरूप रत्ननिका भंडारकू दग्ध करे है, यशकू नष्ट करे है, अपयशरूप कालिमाकू बधावै है, धर्म अधर्म का विचार नष्ट होय जाय है, क्रोधीके अपना मन वचन काय आपके वश नाहीं रहे है। बहुत कालहूकी प्रीतिकू क्षणमात्र में बिगाडि महान वैर उत्पन्न करे है, क्रोधरूप राक्षस के वश होय सो असत्य वचन, लोकनिन्द्य, भील-चाण्डालादिकनि के बोलने योग्य वचन बोलै है। क्रोधी समस्त धर्म लोपै है, क्रोधी होय तब पिताने मारि नाखै, माताकू, पुत्रकू, स्त्रीकू, बालककू, स्वामीकू, सेवककू मित्रकू मारि प्राणरहित करे है। अर तीव्रक्रोधी आपका हू विषतें, शस्त्रतें मरण करे है, ऊंचे मकान तथा पर्वतादिकतें पतन करे है, कूप में पडै है। क्रोधीकी कोऊ प्रकार प्रतीति

नाहीं जानती। क्रोधी है सो यमराज तुल्य है। क्रोधी होय सो प्रथम तो अपना ज्ञानदर्शन क्षमादिक गुणनिकूं घातै है, पीछे कर्म के वशतें अन्य का घात होय वा नाहीं होय। क्रोध के प्रभावतें महातपस्वी दिगम्बरमुनि धर्मतें भ्रष्ट होय नरक गये हैं। यो क्रोध है सो दोऊ लोक का नाश करै है, महा पाप बन्ध कराय नरक पहुंचावै है, बुद्धि भ्रष्ट करै है, निर्दयी करद है, अन्यकृत उपकार भुलाय कृतघ्न करै है। तातें क्रोध समान पाप नाहीं। इस लोक में क्रोधादिक कषाय समान अपना घात करने वाला अन्य नाहीं है। जो लोक में पुण्यवान हैं महाभाग्य है, जिनका दोऊ लोक सुधरना है तिनही के क्षमा नाम गुण प्रगट होय है। क्षमा जो पृथ्वी, ताका ज्यों सहने का स्वभाव होय सो क्षमा है। अर सम्यक् स्वरूपकूं हित अहितकूं समझकरि जो असमर्थनिकरि किया हू उपद्रवनिकूं आप समर्थ होय करके रागद्वेष रहित हुआ सहै है, विकारी नाहीं होय है ताकू उत्तम क्षमा कहिये है। इहां उत्तम शब्द सम्यग्ज्ञानसहित होनेकूं कह्या है। उत्तम क्षमा त्रैलोक्य में सार है। उत्तम क्षमा संसार समुद्रतें तारने वाली है। उत्तम क्षमा है सो रत्नत्रयकूं धारण करने वाली है। उत्तम क्षमा दुर्गति के दुःखनिकूं हरने वाली है। जाके क्षमा होय ताके नरक अर तिर्यञ्च दोऊ गतिनि में गमन नाहीं होय है। उत्तम क्षमा

की लार अनेक गुणनिका समूह प्रगट होय है। मुनीश्वरनि कू तो अति प्यारी उत्तम क्षमा है। उत्तम क्षमा का लाभकू ज्ञानीजन चिन्तामणिरत्न का लाभ समान लाभ मानैं है। अर उत्तम क्षमा ही मन की उज्ज्वलता करै है। क्षमागुण विना मन की उज्ज्वलता अर स्थिरता कदाचित् ही नाहीं होय है। वांछित सिद्ध करने वाली एक क्षमा ही है। इहां क्रोध क जीतने की भावना ऐसी जाननी—कोऊ आपकू दुर्वचनादि करि दु:खित करै, गाली दे, चोर कहै, अन्यायी, पापी, दुराचारी, दुष्ट, नीच वा दोगला, चाण्डाल, पापी, कृतघ्नी, ऐसे अनेक दुर्वचन कहै तो ज्ञानी ऐसी भावना करै—जो याका मैं अपराध किया है कि नाहीं किया है ? जो मैं याका अपराध किया तथा रागद्वेष मोहका वशतें कोई बातकरि दुखाया है तदि मैं अपराधी हूँ। मोकू गाली देना, तिरस्कार देना, नीच, चोर, कपटी, अधर्मी कहना न्याय है। मोकू इस सिवाय भी दण्ड देता सो भी ठीक है, मैंने अपराध किया है, मोकू गाली सुनि रोष नाहीं करना ही उचित है। अपराधीकू नरक में दण्ड भोगना पड़ै है। तातैं मेरा निमित्त ते याके दु:ख भया तदि क्लेशित होय दुर्वचन कहै हैं। ऐसा विचारकरि क्लेशित नाहीं होय, क्षमा ही करै है। अर जो दुर्वचन कहने वाला मन्दकषायी होय तो आप जाय, क्षमा ग्रहण करावनेकू कहै—भो कृपालु ! मैं अज्ञानी प्रमाद के

वश वा कषाय के वश होय आपका चित्त दुखाया सो अब अपराध माफ कराऊं हूं। आगाने ऐसा क्षमा चूक करि नाहीं कराया, एकवार चूकि जाय तासौं चूकके महत् पुरुष माफ करै हैं। अर जो आगला न्याय रहित तीव्र कषाय होय तो वाकूं अपराध माफ करावने को जाय नाहीं, कालान्तर में क्रोध उपशान्त हुया पाछैं माफ करावै। अर जो आप अपराध नाहीं किया अर ईर्षामात्र करि दुष्टतातैं आपकूं दुर्वचन कहै, तथा अनेक दोष लगावै तो ज्ञानी चित्तमें क्लेश नाहीं करै, ऐसा विचारै—जो मैं याका धन हर्या होय, तथा जमीन जायगा खोसी होय, तथा याकी आजीविका बिगाडी होय, चुगली खाई होय तथा याका दोष कहनादि करके जो मैं अपराध किया होय तो मोकूं पश्चात्ताप करना उचित है। अर जो मैं अपराध नाहीं किया तदि मोकूं कुछ फिकर नाहीं करना। यो दुर्वचन कहै है सो नामकूं कहै है तथा कुल को कहै है। सो नाम मेरा स्वरूप नाहीं, जाति कुलादि मेरा स्वरूप नाहीं, मैं तो ज्ञायक हूं, जाकूं कहै सो मैं नाहीं। मैं हूं ताकूं वचन पहुंचै नाहीं [illegible] मोकूं क्षमा ग्रहण करना ही श्रेष्ठ है। बहुरि जो या [illegible] कहै है सो मुख याका अभिप्राय याका, जिह्वा, [illegible] याका, अर शब्द अर पुद्गल याका। [illegible] उपज्या जाकूं श्रवणकरि मैं जो विकारकूं [illegible]

पडी अज्ञानता है। बहुरि जो ईर्षावान दुष्ट पुरुष मोकू गाली दे है, सो स्वभावकरि देखिये तो गाली कुछ वस्तु ही नाहीं है, मेरे कहा हूँ गाली लगा नाही दीखै है, अवस्तु में देने लेने का व्यवहार—ज्ञानी होय सो कैसे सकल्प करै।

बहुरि जो मोकू चोर कहै, अन्यायी कपटी अधर्मी इत्यादिक कहै, तहा ऐसा चिंतवन करै—'जो हे आत्मन्! तू अनेक बार चोर हुआ, अनेक जन्म मे व्यभिचारी, जुआरी, अभक्ष्यभक्षी, भील, चाण्डाल, चमार, गोला, दादा, शूकर, गधा इत्यादिक तिर्यंच तथा अधर्मी पापी कृतघ्नी होय २ आया, अर ससार में भ्रमण करता अनेक बार होऊ गा, अर कोऊ तोकू कूकर शूकर चोर चाडाल कहै ताकू श्रवणकरि तोकू क्लेशित होना बडा अनर्थ है। अथवा ये दुष्टजन दुर्वचन कहै है सो याको अपराध नाही, हमारा बाध्या पूर्व जन्म कृत कर्म का उदय है। सो याके दुर्वचन कहने के द्वारकरि हमारे कर्म की निर्जरा होय है। सो हमारे बडा लाभ है। इनका यह हू उपकार है जो य दुर्वचन कहने वाले पुण्यका समूह का तो दोष कहन करि नाश करै है अर मेरे रिये पापकू दूरि करै है। ऐसे उपकारीतैं जो मै रोष करू तो मो समान कोऊ अधम नाहीं है। बहुरि यो तो मोकू दुर्वचन ही कह्या है, मारया तो नाहीं, रोषकरि मारने लागि जाय है, क्रोधी तो अपने पुत्र पुत्री स्त्री बालादिकू मारै

है सो मोहू मारया नाहीं, यो भी लाभ है। अर जो दुष्ट आपहू मारै तो ऐसा विचारै—जो मोहू मारया ही, प्राण रहित तो नाहीं किया, दुष्ट तो आपका मरण नाहीं गिन धरकै भी अन्यकू मारै है, यो भी मेरे लाभ है। अर जो प्राण रहित करै तो ऐसा विचारै—एक बार मरणो ही छो, यमको ऋण चुक्यो। हम यहां ही कर्म के ऋणरहित भये, हमारा धर्म तो नाहीं नष्ट भया। प्राणधारण तो धर्महीतैं सफल है। ये द्रव्यप्राण तो पुद्गलमय है, मेरा ज्ञान दर्शन क्षमादिधर्म ये भावप्राण है, इनका घात क्रोधकरि नाहीं भया। इस समान मेरे लाभ नाहीं है।

बहुरि जो कल्याण रूप कार्य है तिनमें अनेक विघ्न आवै ही है। जो मेरे विघ्न आया सो ठीक ही है। मैं तो अब समभावहू आश्रय करूं। अर जो उपद्रव आवते मैं क्षमा छांडि, विरागहू प्राप्त हूंगा तो मोहू देखि अन्य मंद-ज्ञानी तथा कायर त्यागी तपस्वी धर्मतैं शिथिल हो जायगा, तो मेरा जन्म केवल अन्य के क्लेश के अर्थि ही भया। तथा मैं वीतरागधर्म धारण करके हू क्रोधी विकारी दुर्वचन होऊं तो मोहू देखि अन्य हू क्रोध में प्रवर्तने लगि जाय, तदि धर्म की मर्यादा भङ्गकरि पापकी परिपाटी चलाने वाला मैं ही प्रधान भया। तातैं क्षमागुण प्राण जाते हू, धन अभिमान नष्ट होते हू मोहू छांडना उचित नाहीं।

बहुरि पूर्वे मैं अशुभ कर्म उपजाया ताका फल मैं ही भोगूंगा। अन्य जे जन हैं वे तो निमित्तमात्र हैं। इनके निमित्तैं पाप उदय नहीं आता तो अन्य के निमित्तैं आता। उदय में आया कर्म तो फल दिये बिना टलता नहीं। बहुरि ये लौकिक अज्ञानी मेरे विषै क्रोधित होय दुर्वचनादिक करि उपद्रव करें हैं, अर जो मैं भी याकैं दुर्वचनादिक करि उत्तर करूं तो मैं तत्त्वज्ञानी, अर ये अज्ञानी, दोऊ समान भया, हमारा तत्त्वज्ञानीपना निरर्थक भया। न्यायमार्गतैं उदयमें आया मेरा पापकर्म ताकू सन्मुख होते कौन विवेकी अपना आत्माकू क्रोधादिकनिकै वश करै। भो आत्मन ! पूर्वे बांध्या जो असाताकर्म ताका अब उदय आया, ताकू इलाजरहित अशोक जानि करके समभावनितैं सहो। जो क्लेशित होय भोगोगे तो असाताकू तो भोगोहीगे, अर नवीन बहुत असाताका बन्ध और करोगे। तातैं होनहार दुःख तैं निःशक्ति होय समभावतैं ही सहो। ये दुष्टजन बहुत हैं, अपना सामर्थ्य करके मेरे रोषरूप अग्निकू प्रज्वलितकरि मेरा समभावरूप सम्पदाकू दग्ध किया चाहै हैं। अब यहां जो असावधान होय क्षमाकू छांड दूंगा तो अवश्य ही साम्यभाव नष्ट करिकै धर्म अर अपना यश का नाश करने वाला होय जाऊंगा। तातैं दुष्टनिका मर्मर्में सावधान रहना उचित है। ज्ञानी मनुष्य तो नाहीं

सहा जाय ऐसा [illegible]
होना जानि [illegible]
देख्या जो मैं [illegible]
भया। अर जो [illegible]
परके मेरा इलाज [illegible]
तिनतैं कैसे छूटूं [illegible]
है। अथवा वर्तै [illegible]
साम्यभावका [illegible]
परीक्षा-स्थान [illegible]
ये परीक्षा करने को [illegible]
मर्यादा [illegible]
नेत्र का धारकहूँ, मैं [illegible]
अग्नि में भस्म होय [illegible]
करने वाला, समान [illegible]
चित्त जो द्रोहरू [illegible]
मिथ्यादृष्टीनिकू समान [illegible]

अर दुष्ट जननि [illegible]
अर क्षमा ग्रहण करा [illegible]
न करै तो ज्ञान जन [illegible]
करनेवाला वैद्य कोऊ [illegible]

देय विष दूरि कर्या चाहे, अर वाका जहर दूरि नाहीं होय तो वैद्य आप जहर नाहीं खाय है। जो यासा विष दूर नाहीं भया तो मैं हूँ विष भक्षणकरि मरू—ऐसा न्याय नाही है। तैसे ज्ञानीजन हू दुष्टजन की पहले दुष्टता की जाति पिछानैं जो यो दुष्टता छाडैगा वा नाहीं छाडैगा वा अधिक दुष्टता धारैगा, एसा विचारि जो विपरीत परिणमता देखि तातू तो उपदेश ही नाहीं देना। अर कुछ समझने लायक योग्यता दीखै तो न्याय वचन हितमितरूप कहना। अर दुष्टता नाहीं छाडै तो आप क्रोधी नाहीं होना। जो यो मोकू दुर्वचनादि उपद्रवकरि नाहीं कम्पायमान करै तो मैं प्रशम भावकरि धर्मका शरण कैसे ग्रहण करता? तातैं जो मोकू पीडा करने वाला है सो मोकू पापतैं भयभीत करि धर्मसू सम्बन्ध कराया है। तातैं पीडा करने वाला हूँ मेरा प्रमादीपना छुडाय बडा उपकार किया है। -

बहुरि जगत मे केतेक उपकारी तो ऐसे हैं जो अन्य-जन के सुखी होने के निमित्त अपना शरीरकू छांडे हैं, अर धनकू छाडै हैं। तो मेरे दुर्वचन बन्धनादिक सहने मे कहा जायगा? मोकू दुर्वचन कह ही अन्य के सुखी हो जाय तो मेरे क्या हानि है? बहुरि जो अपनेकू पीडा करनेवालेतैं रोष नाहीं करू तो वैरी के पुण्य का नाश होय है अर मेरे आत्मा के हितकी सिद्धि होय है। अर पीडा करनेवालेतैं

रोष करू तो मेरे आत्मा का हित का नाश होय दुर्गति होय। यातैं प्राणनिका नाश होतैं हू दुष्टनि प्रति क्षमा करना ही एक हित सत्पुरुष कहे हैं, तातैं आत्मकल्याणकी सिद्धि के अर्थि क्षमा ही ग्रहण करो। अथवा दुष्टनिकरि दुर्वचनादिक पीडा करनेतैं मेरे जो क्षमा प्रगट भई है सो मेरे पुण्य का उदयतैं या परीक्षाभूमि प्रगट भइ है। जो मैं इतना कालतैं वीतराग का धर्म धारण किया सो अर क्रोधादिक के निमित्ततैं साम्यभाव रह्या कि नाहीं रह्या, ऐसी परीक्षा करू। बहुरि मोई साम्यभाव प्रशंसा-योग्य है, अर सो ही कल्याण का कारण है जो मारने के इच्छुक निर्दयी निकरि मलीन नाहीं किया गया। बहुरि चिरकालतैं अभ्यास किया शास्त्र करके अर साम्य भाव करके कहा साध्य है जो प्रयोजन पड़यां व्यर्थ हो जाय है। धैर्य यो ही प्रशंसा योग्य है जो दुष्टनिके दुर्वचनादि होतें नाहीं छूटे, दृढ रहे। उपद्रव आये बिना तो समस्त जन सत्य शौच क्षमा के धारक बन रहे हैं। जैसे चन्दनवृक्ष कुल्हाडा काटै तौहू कुल्हाड़े का मुखकू सुगन्ध ही करै, तैसें जाकी प्रवृत्ति होय सोही सिद्धिकू साध्या है।

बहुरि अन्यकरि किया उपसर्गतैं वा स्वयमेव आया उपसर्ग तिनकरि जाका चित्त कलुषित नाहीं होय सो अविनाशी सम्पदाकू प्राप्त होय है। अज्ञानी हैं ते अपने भारति-

करि पूर्व किया पापकर्म ताके अर्थि तो नाहीं रोष करै अर जो कर्म के फल देन के बाह्यनिमित्त तिनि प्रति क्रोध करे है। जिस कर्म का नाशतैं मेरा संसार का संताप नष्ट हो जाय सो कर्म स्वयमेव भोग्या तौ मेरे वांछित सिद्ध भया। बहुरि यो संसाररूप वन अनन्त सक्लेशनि करि भरया है। इसमें बसने वाला के नाना प्रकार के दुःख नाहीं सहने योग्य हैं कहा? संसार मे तो दुःख ही है। जो इस संसार में सम्यग्ज्ञान विवेककरि रहित अर जिनसिद्धांततैं द्वेष करने वाले अर महानिर्दयी अर परलोक का हितरूप अर्थि जिनके बुद्धि नाहीं अर क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित अर दुष्टताकरि सहित, विषयनिकी लोलुपताकरि अन्ध, हठग्राही, महा अभिमानी, कृतघ्नी ऐसे बहुत दुष्टजन नाहीं होते तो उज्ज्वल बुद्धि के धारक सत्पुरुष व्रत तपश्चरणकरि मोक्ष के अर्थि उद्यम कैसे करते? ऐसे क्रोधी, दुर्वचन के बोलनहारे, हठग्राही, अन्यायमार्गीनिकी अधिकता देखि करके ही सत्पुरुष वीतरागी भये हैं। अर जो मैं बड़े पुण्य के प्रभावतैं परमात्माका स्वरूप का ज्ञाता भया अर सर्वज्ञकरि उपदेश्या पदार्थनिहू हू निर्णयरूप जाण्या अर संसार के परिभ्रमणादिकतैं भयभीत होय वीतरागमार्ग में हू प्रवर्तन किया, अब हू जो क्रोध के वश हूगा तो मेरा ज्ञान चारित्र समस्त निष्फल होयगा, अर धर्मका अपयश करावनवारा होय दुर्गतिका पात्र हूगा।

बहुरि और हू पद्मनन्दिमुनि कह्या है–जो मूर्खजनकरि बाधा पीडा अर क्रोध के वचन अर हास्य अर अपमानादिक होते हू जो उत्तम पुरुषनिका मन विकारकू प्राप्त नाहीं होय ताकू उत्तमक्षमा कहिये है। सो क्षमा मोक्षमार्ग में प्रवर्तता पुरुष क परम सहायताकू प्राप्त होय है। ऐसी चिंतवन करै है, हम तो रागद्वेषादिक मलरहित उज्ज्वल मनकरि तिष्ठा, अन्यलोक हमकू खोटा कहो तथा भला कहो, हमकू कहा प्रयोजन है? वीतरागधर्म क धारकनिकू तो अपने आत्मा का शुद्धपना साधने योग्य है। जो हमारा परिणाम दोष सहित है अर कोऊ हितू हमकू भला कह्या तो भला नाहीं हो जावेंगे अर हमारा परिणाम दोषरहित है अर कोउ हमकू वैरबुद्धितैं खोटा कह्या तो हम खोटा नाहीं हो जावेंगे। फल तो अपनी जैसी चेष्टा आचरण होयगा तैसा प्राप्त होयगा। जैसे कोऊ काचकू रत्न कह दिया अर रत्नकू काच कह दिया तो हू मोल तो रत्न ही पावैगा, काचखण्ड का बहुत धन कौन दर्वै? बहुरि दुष्टजन है ताका तो स्वभाव परके दोष कहा हू नाहीं होय तो हू परके दोष कहा बिना सुखकू प्राप्त नाहीं होय, तातैं दुष्टजन है सो मेरे माहीं अविद्यमान हू दोष लोक्म, घर-घर म, समस्त मनुष्यनिप्रति प्रकटकरि सुखी होहू, अर जो धनका अर्थी है सो मेरा सर्वस्व ग्रहणकरि सुखी होहू, ...ी

णहरण का अर्थी है सो शीघ्र ही प्राण हरो, अर स्थानको
र्थी है सो स्थान हरो, मैं मध्यस्थ हूँ, रागद्वेष रहित हूँ,
मस्त जगत् के प्राणी मेरे निमित्तैं तो सुखरूप तिष्ठो
रे निमित्तैं किसी प्राणी के कोऊ प्रकार दुःख मति होहु।
ा मैं घोषणाकरि कहूँ हूं, क्योंकि मेरा जीवना तो आयुकर्म
के आधीन, अर धनका अर स्थान का जावना रहना पाप
ुण्य के आधीन है। हमारे किसी अन्य जीव से वैर विरोध
ाहीं है, समस्त के प्रति क्षमा है।

बहुरि हे आत्मन्! जे मिथ्यादृष्टि अर दुष्टता सहित
अर हित अहित का विवेकरहित मूढ ऐसे मनुष्यनिकरि
किए जे दुर्वचनादिक उपद्रवनितैं अस्थिर हुआ बाधाकू मानि
क्लेशित होय रह्या है सो तीनों लोक का चूड़ामणि भगवान
वीतराग है ताहि नाहीं जान्या कहा? तथा वीतराग का धर्म
की उपासना नाहीं कोइ कहा? तथा लोकनिकूं मूर्ख नाहीं
जान्या कहा? मोही, मिथ्यादृष्टि, मूढधी के ज्ञान तो विपरीत
ही होय है, कर्मनिके वसि हैं तातैं इनमें क्षमा ही ग्रहण
करना योग्य है। क्षमा है सो इसलोक में परमशरण है,
माताकी ज्यों रक्षा करने वाली है। बहुत कहा कहिये—जिन
धर्म का मूल क्षमा, याके आधार सकलगुण हैं, कर्मनिर्जरा
को कारण है, हमारा उपद्रव दूरि करने वाली है। यातैं
धन जाते, जीवितव्य जाते हू क्षमाकू छाडना योग्य नाहीं।

कोऊ दुष्टताकरि आपकू प्राणरहित करै तिस काल मैं हू कटुवचन मति कहो। जो मारने वालेकू भी अन्तर्गत वैर छाडि ऐसे कहो-जो आप तो हमारे रक्षक ही हो परन्तु हमारा मरण आय पहुंच्या तदि आप कहा करो? हमारे पाप कर्म का उदय आय गया, तो हू हमारा बडा भाग्य है जो आप सरीखे महान् पुण्यनिके हस्तादिकनैं हमारा मरण होय। अर जो हम सरीखा अपराधीकू आप दण्ड नाहीं दिये तो मार्ग मलीन हो जाय, अर हम अपराध को फल नरक तिर्यंच गति मैं आगे भोगते सो आप हमकू ऋण रहित किया। मैं आपसू वैर विरोध मन वचन कायतैं छाडि क्षमा ग्रहण करू हू, अर आप भी मेरे अपराध को दण्ड देय क्षमा ग्रहण करो। रोगादिक कष्टकू भोगि करिकैं अति दुःखतैं मरण करतो सो अब धर्म का शरणमूं ऋण रहित होय सज्जन की कृपा सहित मरण करस्यू। ऐसैं मारने वालेसू हू वैर त्यागि समभाव करना सो उत्तम क्षमा है। ऐसैं उत्तम क्षमा नामा धर्म कू कह्या॥ १॥

उत्तम मार्दव

अब उत्तम मार्दव नाम गुणकू कहै हैं—मार्दवका स्वरूप ऐसा है—जो मानकषायकरि आत्मा मैं कठोरता होय है सो

कठोरता का अभाव होनेतैं जो कोमलता होय सो मार्दवनाम आत्मा का गुण है। अर जो आत्माका अर मानकषाय का भेदकरि अनुभवकरि मान मद का छोडना सो उत्तम मार्दव नाम गुण है। मानकषाय तो संसार का बधावने वाला है अर मार्दव संसार परिभ्रमण का नाश करने वाला है। यो मार्दवगुण दयाधर्मका कारण है। अभिमानी कै दयाधर्मका मूलहीतैं अभाव जानना। कठोर परिणामी तो निर्दयी होय है। मार्दवगुण समस्तके हित करने वाला है। जिनके मार्दवगुण है तिनही का व्रत पालना, संयम धारणा, ज्ञानका अभ्यास करना सफल है, अभिमानी का निष्फल है। मार्दव नाम गुण मानकषाय का नाश करने वाला है अर पंचइन्द्रिय अर मनकू दण्ड देने वाला है। मार्दव धर्म के प्रसादतैं चित्तरूप भूमि मे करुणा रूप वल नवीन फैले हैं। मार्दव करके ही जिनेन्द्र भगवान् मे तथा शास्त्रान मे भक्ति का प्रकाश होय है। मद सहित के जिनेन्द्र के गुणनि मे अनुराग नाहीं होय है। मार्दवगुणकरि कुमतिज्ञान के प्रसार का नाश होय है, कुमति नाहीं फैले है। अभिमानी के अनेक कुबुद्धि उपजै है। मार्दव गुणकरि बडा विनय प्रवर्तै है। मार्दव करके बहुत कालका वैरी हू वैर छाडे हैं। मान घटे तदि परिणामनिकी उज्ज्वलता होय। कोमल परिणाम करके ही दोऊ लोककी सिद्धि होय, कोमल परिणामीकू

इस लोक में सुयश होय है परलोक में देवलोक की प्राप्ति होय हैं। कोमल परिणाम करिकैं ही अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तप भूषित होय हैं। अभिमानीका तप हू निंद्बे योग्य है, कोमलपरिणामीतें तीन जगतके लोकनिका मन रञ्जायमान होय है, मार्दव करिकै जिनेन्द्रका शासन जानिये है, मार्दव करिकैं अपना परका स्वरूप अनुभव करिये है। कठोर-परिणामीके आपापरका विवेक नाहीं होय है। मार्दव करि के समस्त दोषनिका नाश होय है। मार्दव परिणाम संसारसमुद्रतें पार करै है। यातैं मार्दवपरिणामकूं सम्यग्दर्शनका अंग जानि निर्मल मार्दवधर्म का स्तवन करो।

संसारीजीवनिके अनादिकालका मिथ्यादर्शनका उदय होय रहा है, ताका उदयकरि पर्यायबुद्धि हुआ जातिकूं, कुलकूं, विद्याकूं, ऐश्वर्यकूं, रूपकूं, तपकूं, धनकूं अपना स्वरूप मानि इनका गर्वरूप होय रहा है। ताकूं यह ज्ञान नाहीं है जो ये जातिकुलादिक समस्त कर्मका उदयके अधीन पुद्गलके विकार हैं, विनाशीक हैं, मैं अविनाशी ज्ञानस्वभाव अमूर्तीक हूँ, मैं अनादिकालतैं अनेक जाति कुल बल ऐश्वर्यादिक पाय पाय छाड़े हैं, मैं अब कौनमें आपा धारूं। समस्त धन यौवन, इन्द्रियजनित ज्ञानादिक विनाशीक हैं, क्षणभंगुर हैं, इनका गर्व करना संसारपरिभ्रमणका कारण है। इस संसारमें स्वर्गलोकका

महाऋद्धिका धारक देव मरि करि एक समयमें एकेंद्रिय आय उपजै हैं तथा कूकर शूकर चाडालादिक पर्यायकूं प्राप्त होय हैं। चक्रवर्ती नवनिधि चौदह रत्ननिका धारक एक समयमें मरि सप्तम नरकका नारकी होजाय हैं। तथा बलभद्र नारायण का ऐश्वर्य नष्ट हो गया अन्य की कहा कथा है? जिनकी हजारां देव सेवा करें तथा तिनकै पुण्य का क्षय होते कोऊ एक मनुष्य पानी देनेवाला हू नाहीं रह्या, अन्य पुण्य-रहित जीव कैसे मदोन्मत्त बन रहे हैं। बहुरि जे उत्तम ज्ञानकरि जगतमें प्रधान हैं अर उत्तम तपश्चरण करनेमें उद्यमी हैं अर उत्तम दानी हैं ते हू अपने आत्माकूं अति नीचा मानें हैं, तिनके मार्दवधर्म होय है।

विनयवानपना मदरहितपना समस्त धर्मका मूल है। समस्त सम्यग्ज्ञानादि गुणको आधार है। जो सम्यग्दर्शनादि गुणनिका लाभ चाहो हो अर अपना उज्ज्वल यश चाहो अर वैरका अभाव चाहो हो तो मदनिकूं त्यागि कोमलपना ग्रहण करो। मद नष्ट हुवा विना विनयादिक गुण, वचनकी मिष्टता, पूज्यपुरुषनिका सत्कार, दान सन्मान एक हू गुण नहीं प्राप्त होयगा। अभिमानीका विना अपराध समस्त वैरी होजाय हैं। अभिमानीकी समस्त निन्दा करै हैं। अभिमानीका समस्त लोक पतन होना चाहै हैं। स्वामी हू अभिमानी सेवककूं त्यागै हैं। अभिमानीकै गुरुजन

विद्या देने में उत्साह रहित होय है, अपना सेवक पराङ्मुख हो जाय। मित्र, भाई, हितू, पड़ोसी, याका पतन ही चाहे हैं। पिता गुरु उपाध्याय तो पुत्रकूं शिष्यकूं विनयवन्त देख करि ही आनन्दित होय हैं। अविनयी अभिमानी पुत्र वा शिष्य बड़े पुरुष के मनकूं संतापित करे है। तातैं पुत्रका तथा शिष्यका तथा सेवकका तो ये ही धर्म है—जो नवीन कार्य करना होय सो पिता गुरु स्वामीकूं जनाय करि करै, आज्ञा मांगि करै तथा आज्ञा को अवसर नाहीं मिलै तो अवसर देखि शीघ्र ही जनावै, यो ही विनय है, याही भक्ति है।

जाका मस्तक उपरि गुरु विराजै ते धन्य भाग हैं। विनयवन्त मदरहित पुरुष हैं ते समस्त कार्य गुरुनि कों जनाय दे हैं। अन्य हैं जे इस कलिकाल में मदरहित कोमल परिणामकरि समस्त लोक में प्रवर्तें हैं। उत्तम पुरुष हैं ते बालकनिमें, वृद्धन, निर्धनन, रोगीनिम, बुद्धिरहित मूर्खनिम, तथा जातिकुलादि हीन म हू यथायोग्य प्रियवचन, आदर सत्कार स्थानदान कदाचित नाहीं चूकें हैं, प्रियवचन ही कहैं। उत्तम पुरुष उद्धतता का वस्त्र आभरण नाहीं पहरै, उद्धतपणा करके अपमान का कारण देन-लेन विवाहादि व्यवहार कार्य नाहीं करै हैं। उद्धत होय अभिमानीपना का चालना, बैठना, झांकना, बोलना दूर ही तैं छाड़ तातैं

लोरम पूज्य मार्दवगुण होय है। धन पावना, रूप पावना, ज्ञान पावना, विद्याकलाचतुराई पावना, ऐश्वर्य पावना, बल पावना, जातिकुलादि, उत्तमगुण, जगन्मान्यता पावना, तिन का सफल है जो उद्धततारहित, अभिमानरहित, नम्रता सहित, विनयसहित प्रवर्ते है। अपने मनमें आपकूं सबतें लघु मानता कर्म के परवश जानें है, सो कैसे गर्व करें? नाहीं करै है। भव्यजन हो! सम्यग्दर्शन का अङ्ग इस मार्दव अङ्गकू आत्मि चिंतक विषै ध्यान करो, स्तवन करो। ऐसैं मार्दवधर्म को वर्णन किया ॥ २ ॥

उत्तम आर्जव धर्म

अब आर्जव धर्मकू वर्णन करै है—धर्मरा श्रेष्ठ लक्षण आर्जव है। आर्जव नाम सरलता का है, मन वचनकाय की कुटिलता का अभाव सो आर्जव है। आर्जव धर्म है सो पाप का खण्डन करने वाला है अर सुख उपजाने वाला है। तातैं कुटिलता छाडि कर्म का क्षय करने वाला आर्जव धर्म धारण करो। कुटिलता है सो अशुभ कर्म का बन्ध करने वाली है, जगतमें अतिनिन्द्य है। यातें आत्मा का हितका इच्छुकनिकूं आर्जव धर्म का अवलम्बन करना उचित है। जैसा आपके चित्त में चिन्तवन करिये तैसा ही अन्यकूं कहना, अर जैसा ही बाह्यकार्यकरि प्रवर्तन करिये सो सुख

का संचय करने वाला आर्जव धर्म कहिये है। मायाचाररूप शल्य मनतैं निकालो, उज्ज्वल पवित्र आर्जव धर्म का विचार करो। मायाचारी का व्रत तप संयम समस्त निरर्थक है। आर्जवधर्म निर्वाण के मार्ग का सहाई है। जहां कुटिल वचन नाहीं बोले तहां आर्जव धर्म प्राप्त हो है। यो आर्जव धर्म है सो दर्शनज्ञानचारित्र को अखण्डस्वरूप है, अर अतींद्रिय सुखका पिटारा है। आर्जव धर्म का प्रभावकरि अतींद्रिय अविनाशी सुखकूं प्राप्त होय है। संसाररूप समुद्र के तरनेकूं जिहाज रूप आर्जव ही है।

मायाचार जान्या जाय तदि प्रीति का भङ्ग होय है, जैसे कांजीतैं दुग्ध फटि जाय है। अर मायाचारी अपना कपटकूं बहुत छिपावन हू प्रकट हुयां बिना नाहीं रह। परजीवनिकी चुगली करै वा दोष प्रकाशै ते आपही प्रगट हो जाय हैं। मायाचार करना है सो अपनी प्रतीति का बिगाडना है। मायाचारी का समस्त हितू बिना किये वैरी होय हैं। जो व्रती होय, त्यागी-तपस्वी होय, अर जाका कपट एक बार किया हू प्रगट हो जाय ताकूं समस्त लोक अधर्मी मानि कोऊ प्रतीति नाहीं करै है। कपटीकी माताहू प्रतीति नाहीं करै है। कपटी तो मित्रद्रोही, स्वामीद्रोही, धर्मद्रोही, कृतघ्नी है अर यो जिनेन्द्र को धर्म तो कपटरहित छल रहित है। जैसे बांका म्यान मे सूधो खड्ग प्रवेश नाहीं करै

तैसे कपटकरि वक्रपरिणामी का हृदय मे जिनेन्द्र का आर्जव कहिये सरल धर्म प्रवेश नाहीं कर सकै है । कपटी का दोऊ लोक नष्ट हो जाय है । यातैं जो यश चाहो हो, धर्म चाहो हो, प्रतीति चाहो हो, तो मायाचार का त्यागकरि आर्जव धर्म धारण करो । कपट रहितकी वैरी हू प्रशसा करै है । कपटरहित, सरलचित्त, जो अपराध भी किया हो तो दण्ड देने योग्य नाहीं है । आर्जव धर्म का धारक तो परमात्मा का अनुसर में सकल्प करै है, कषाय जीतने का, सतोष धारने का सकल्प करै है, जगत के छलनिका दूरहीतैं परिहार करै है, आत्माकू असहाय चैतन्यमात्र जानै है । जो धन सम्पदा कुटुम्बादिककू अपनावै सो ही कपट छलकरि ठिगाई करै । तातैं जो आत्माकू ससार परिभ्रमणतैं छुडाय परद्रव्यनितैं आपकू भिन्न असहाय जानै सो धन जीवितव्य के अर्थि कपट कदाचित् नाहीं करै । तातैं जो आत्माकू ससार परिभ्रमणतैं छुटाया चाहो तो मायाचारका परिहार करि आर्जवधर्म धारण करो । ऐसे आर्जवधर्म का वर्णन किया ॥ ३ ॥

उत्तम सत्य धर्म

अब सत्य धर्म का वर्णन करै हैं—जो सत्यवचन है सो ही धर्म है । यो सत्यवचन दयाधर्म को मूल कारण है, अनेक दोषनिका निराकरण करने वाला है, इस भवम यश

परमागम सुरक्षा करने वाला है, समस्त के विश्राम करनेका कारण है। समस्त धर्म के मध्य सत्यवचन प्रधान है। सत्य हैं सो संसार समुद्र के पार उतारनेकू जहाज है। समस्त विधाननि में सत्य है सो बड़ा विधान है। समस्त सुख का कारण सत्य ही है। सत्यतैं ही मनुष्यजन्म भूषित होय है। सत्य करके समस्त पुण्य कर्म उज्ज्वल होय हैं। जे पुण्य के ऊँचे कार्य करिये हैं तिनकी उज्ज्वलता सत्य बिना नाहीं होय है। सत्यकरि समस्तगुणनिका समूह महिमाकू प्राप्त होय है। सत्य का प्रभावकरि देव हैं ते सेवा करें हैं। सत्य करके ही अणुव्रत, महाव्रत होय हैं। सत्य बिना व्रत संजम नष्ट हो जाय है। सत्यकरि समस्त आपदा को नाश होय है। यातैं जो वचन बोलो सो अपना परका हितरूप कहो, प्रमाणीक कहो, कोउकू दु:ख उपजे ऐसा वचन मति कहो, परजीवनि के बाधाकारी सत्य हू मति कहो, गर्व रहित कहो, परमात्मा को अस्तित्व कहने वाला वचन कहो, नास्तिकनि के वचन पाप पुण्य का, स्वर्ग नरक का अभाव कहने वाला वचन मति कहो।

यहां ऐसा परमागम का उपदेश जानना—यो जीव अनंतानंतकाल तो निगोदमें ही रह्या। तहां वचनरूप कर्म वर्गणा ही ग्रहण नाहीं करी, क्योंकि पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय इनके मध्य अनन्तकाल

अमरयातराल रह्यो। तहां तो जिह्वा इन्द्रिय ही नाहीं पाई, बोलने की शक्ति ही नाहीं पाई। अर जो विकल-चतुष्क मे उपज्या तथा पचेन्द्रियतिर्यंचनि मे उपज्या तहा जिह्वा इन्द्रिय पाई तो हू अक्षरस्वरूप शब्द उच्चारण करने का सामर्थ्य नाहीं भया। एक मनुष्यपना में वचन बोलने की शक्ति प्रकट होय है। ऐसा दुर्लभ वचनकू असत्य बोलि बिगाड दना सो बडा अनर्थ है। मनुष्यजन्म की महिमा तो एक वचन हीतैं है, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका तो ढोर तिर्यंचकू होय है। खावना पीवना कामभोगादिक पुण्य पाप के अनुकूल ढोरनिकू हू प्राप्त होय है। आभरण वस्त्रादिक कूकरा, बानरा, गधा, घोडा, ऊँट, बलध इत्यादिकनिकू हू मिलै हैं, परन्तु वचन कहने की शक्ति, श्रवण करने की शक्ति तथा उत्तर दने की शक्ति तथा पढने पढावने का कारण वचन तो मनुष्यजन्मम ही है। अर मनुष्यजन्म पाय जो वचन बिगाड़ि दिया सो समस्त जन्म बिगाडि दिया। बहुरि मनुष्यजन्ममें जो लेना-देना, कहना-सुनना, धीन प्रतीन, धर्म-कर्म, प्रीति-वैर इत्यादिक जे प्रवृत्तिरूप अर निवृत्तिरूप कार्य हैं ते वचन के अधीन है। अर वचनकू ही दूषित कर दिया तहि समस्त मनुष्यजन्म का व्यवहार बिगाड दूषित कर दिया। तातै प्राण जाते हू अपना वचनकू दूषित मत करो।

बहुरि परमागमम कह्या जो ऐसे प्रकार का असत्य वचन ताका त्याग करो। जो विद्यमान अर्थका निषेध करना सो प्रथम असत्य है, जैसे कर्म भूमिका मनुष्य तिर्यंचका अकालमृत्यु नाहीं होय, ऐसा वचन असत्य है। जातैं देव नारकी तथा भोग भूमिका मनुष्य तिर्यंचका तो आयुकी स्थिति पूर्ण भया ही मरण है, बीच आयु नाहीं छिदै है, जितनी स्थिति बांधी तितनी भोग करकै ही मरण करै हैं। अर कर्मभूमिका मनुष्यतिर्यंचनिका आयु है सो विषका भक्षणकरि तथा ताडन, मारण, छेदन, बन्धनादिक वेदनाकरि तथा रोगकी तीव्र वेदनाकरि तथा देहतैं रुधिर का नाश होनेकरि तथा दुष्ट मनुष्य दुष्ट तिर्यंच, भयकर देवकरि उपज्या भयकरि तथा वज्रपातादिक का स्वचक्र परचक्रादिक का भयकरि तथा शस्त्रका घातकरि तथा पर्वतादिकतैं पतनकरि तथा अग्नि हवन, जल, कलह-विसंवादादिकतैं उपज्या क्लेशकरि तथा स्वास उस्वासका धूमादिकतैं रुकनेकरि तथा आहारपानादिका निरोधकरि आयुका नाश होय है। आयुकी दीर्घस्थिति हू विषभक्षण, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, स्वासोच्छ्वास निरोध करि अन्न पानका अभावकरि तत्काल नाशकूं प्राप्त होय ही है।

कोई लोक कहै है—आयु पूरी हुआ बिना मरण नाहीं

होय, ताका उत्तर करै हैं—जो बाह्य निमित्तकू आयु नाहीं छिदै तो विषभक्षणतैं कौन पराङ्मुख होता? अर बिष खाने वालेकू उगाली काहेकू देवे? अर शस्त्रघात करने वालेतैं काहेकू भयकरि भागते? अर सर्प, सिंह, व्याघ्र, हस्ती, तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यंचादिकनितै दूरहीतैं काहेकू छाडते? अर नदी समुद्र कूप बावडी में तथा अग्नि की ज्वाला में पडने तैं कौन भय करता? अर रोग का इलाज काहेकू करते? तातैं बहुत कहने करि कहा, जो आयुघात होने का बहिरङ्ग कारण मिल जाय तो आयु का घात हो जाय, यह निश्चय है। बहुरि आयुकर्म की ज्यों अन्य हू कर्म बहिरङ्ग कारण मिले उदय आवै ही हैं, समस्त जीवनि के पाप कर्म पुण्य कर्म सत्ता में विद्यमान हैं। बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादि परिपूर्ण सामग्री मिले कर्म अपना रस देवै ही है। बाह्य निमित्त नाहीं मिले उदय में नाहीं आवै, तथा रस दिया विना ही निर्जरै है। बहुरि जो असद्भूतकू प्रगट करना सो दूजा असत्य है। जैसे देवनिकै अकालमृत्यु कहना, देवनिकू भोजन ग्रामादि रूप करना कहवा देवनिकू मांसभक्षी करना तथा मनुष्यनिके देवकरि कामसेवन तथा देवांगनातैं मनुष्य के कामसेवन इत्यादिक कहना दूजा असत्य है। बहुरि वस्तु का स्वरूपकू अन्य विपरीत स्वरूप कहना सो तीजा असत्य है। बहुरि गर्हित वचन कहना सो चौथा असत्य वचन है। गर्हित

वचन का तीन भेद हैं—गर्हित, सावद्य, अप्रिय।

तिनमें पैशून्य, हास्य, कर्कश, असमञ्जस, प्रलपित इत्यादिक अन्य हू सूत्रविरुद्ध वचन सो गर्हितवचन हैं। तिनमें जो परके विद्यमान तथा अविद्यमान दोषनिकूं पीठ पाछै कहना तथा परका धनका विनाश, जीविका का विनाश, प्राणनिका नाश जिन वचनतैं हो जाय तथा जगतमें निंद्य हो जाय, अपवाद हो जाय, ऐसा वचन कहना सो पैशून्य नामा गर्हित वचन है। बहुरि हास्य लीला मंड वचन तथा श्रवण करने वालेनिकै अशुभ राग उपजावने वाले वचन सो हास्यनामा गर्हित वचन है। बहुरि अन्यकूं कहै तू ढाढा है, तू मूर्ख है, अज्ञानी है, मूढ है इत्यादिक कर्कश वचन है। बहुरि देश काल के योग्य नाहीं जातैं आपकै व अन्य के महा संताप उपजै सो असमञ्जस वचन है। बहुरि प्रयोजन रहित ढीठपनातैं बकवाद करना सो प्रलपित वचन है।

बहुरि जिन वचनकरि प्राणीनिका घात होजाय, देशमें उपद्रव हो जाय, देश लुटि जाय तथा देश का स्वामीनिकै महा वैर हो जाय तथा ग्राममें अग्नि लगि जाय, घर बल जाय, वन में अग्नि लग जाय तथा कलह विसंवाद युद्ध प्रकट हो जाय तथा विषाद करि मरि जाय, वैर-बन्ध हो जाय तथा छहकाय के जीवनिके घात का प्रारम्भ हो जाय, महाहिंसामें प्रवृत्ति हो जाय सो सावद्यवचन हैं। तथा परकूं चोर कहना,

व्यभिचारी कहना सो समस्त मारयवचन दुर्गति के कारण त्यागने योग्य हैं।

अप्रियवचन त्यागने योग्य प्राण जाते हू नाहीं कहना। अप्रियवचन के भेद ऐसे जानने—कर्कश, कटुक, परुषा, निष्ठुरा, परकोपनी, मध्यकृषा, अभिमानिनी, अनयकरी छेदकरी, भूतवधकरी ये महापाप के करने वाली महानिंद्य दश भाषा सत्यवादी त्याग करै है। तू मूर्ख है, बलध है, ढोर है, रे मूर्ख तू कहा समर्क इत्यादिक कर्कशा भाषा हैं।

बहुरि तू कुजाति है, नीच जाति है, अधर्मी महापापी तू स्पर्शन करने योग्य नाहीं, तेरा मुख देख्यां बडा अनर्थ है इत्यादिक उद्वेग करने वाला कटुक भाषा है। तू आचार भ्रष्ट है, भ्रष्टाचारी है, महादुष्ट है इत्यादिक मर्म छेदनेवाली परुषाभाषा है। तोहू मार नाखिस्यू, थारै डाह लगास्यू, थारो मस्तक फाटिस्यु, तनै खाय जास्यू इत्यादिक निष्ठुरा भाषा है। रे निर्लज्ज! वर्णशङ्कर! तेरा जातिकुल आचार का ठिकाना नाहीं, तेरा कहा तप, तू कुशील है, तू हँसने योग्य है, महानिंद्य है, अभक्ष्य भक्षण करने वाला है, तेरा नाम लिया कुल लज्जित होय है, इत्यादिक परकोपनी भाषा है। बहुरि जिस वचन के सुनत ही हाडनिकी शक्ति सामर्थ्य नष्ट हो जाय सो मध्यकृषा भाषा है। बहुरि लोकनिमे अपना

गुण प्रगट करना, परके दोष कहना, अपना कुल जाति रूप बल विज्ञानादिक मद लिये जो वचन बोलना सो अभिमानिनी भाषा है। बहुरि शीलखण्डन करने वाली अर विद्वेष करने वाली अनयकरी भाषा है। बहुरि जो वीर्य शील गुणादिकनि के निर्मूल करने वाली, असत्यदोष प्रगट करने वाली, जगत मे झूठा कलंक प्रगट करने वाली छेदकरी भाषा है। जिस वचनकरि अशुभ वेदना प्रगट हो जाय वा प्राणनिका नाश करने वाली भूतवधकरी भाषा है। ए दश प्रकार निंद्यवचन त्यागने योग्य हैं।

बहुरि स्त्रीनिके हावभाव विलास विभ्रमरूप क्रीडा व्यभिचारादिकनिकी कथा कामके जगाने वाली, ब्रह्मचर्य का नाश करने वाली, स्त्रीनिकी कथा तथा भोजपान में राग करावने वाली भोजन की कथा, तथा रौद्र कर्म कराने वाली राजकथा तथा चोरीनि की कथा तथा मिथ्यादृष्टि कुलिंगीनिकी कथा, तथा धन उपार्जन कराने की कथा, तथा वैरी दुष्टनि के तिरस्कार करने की कथा तथा हिंसाइ पुष्ट करन वाली शास्त्रनि की कथा कहने योग्य नाहीं, श्रवण योग्य नाहीं। पापका आस्रवको कारण अप्रिय भाषा त्यागने योग्य है। भो ज्ञानी हो! ये चार प्रकार की निन्द्य भाषा हास्यकरि, क्रोधकरि, लोभकरि, मदकरि, भयकरि, द्वेषकरि कदाचित् मति कहो। आपका परका हितरूप ही वचन बोलो,

इस जीवकै जैसा सुख हितरूप अर्थसंयुक्त मिष्ट वचन करै हैं निराकुल करै हैं, आताप हरै हैं, तैसा सुखकारी आताप हरने वाली चन्द्रकान्तिमणि, जल, चन्दन, मुक्ताफलादिक कोऊ पदार्थ नाहीं। अर जहां अपने बोलनेतैं धर्म की रक्षा होती होय, प्राणीनि का उपकार होता होय तहां बिना पूछै हू बोलना, अर जहां आपका अन्यका हित नाहीं होय तहां मौनसहित ही रहना उचित है।

बहुरि सत्य वचनतें सकल विद्या सिद्ध होय हैं। जहां विद्या देन वाला सत्यवादी होय अर सीखने वाला हू सत्य वादी होय ताकै सकल विद्या सिद्ध होय, कर्म की निर्जरा होय। सत्य का प्रभाव से अग्नि, जल, विष, सिंह, सर्प, दुष्ट, देव मनुष्यादिक बाधा नाहीं कर सकै हैं। सत्य का प्रभावतैं देवता वशीभूत होय हैं, प्रीति प्रतीति दृढ होय है। सत्यवादी माता समान विश्वास करने योग्य है, गुरु का ज्यों पूज्य होय है, मित्र ज्यों प्रिय होय हैं, उज्ज्वल यशकू प्राप्त होय हैं, तपसंयमादि समस्त सत्यवचनतैं सोहै हैं। जैसैं विष मिलनेकरि मिष्टभोजन का नाश होय, अन्याय करि धर्मका यश का नाश होय तैसैं असत्यवचनतैं अहिंसादि सकलगुण निका नाश होय तथा असत्यवचनतैं अप्रतीति, अकीर्ति, अपवाद, अपनें वा अन्य के संक्लेश, अरति, कलह, बैर, भय, शोक, वध, बन्धन, मरण, जिह्वाछेद, सर्वस्वहरण,

बन्दीगृह में प्रवेश, दुर्ध्यान, अपमृत्यु, व्रत, तप, शील, संयम का नाश, नरकादि दुर्गति में गमन, भगवान की आज्ञा को भङ्ग, परमागमतैं पराङ्मुखता, घोरपाप का आस्रव इत्यादि इतना दोष प्रगट होय है। यातैं भो ज्ञानी जन हो! लोक में प्रिय हित मधुर वचन बहुत भरया है, सुन्दर शब्द की कमी नाहीं, फिर निंद्य वचन क्यों बोलो हो?

रे तू इत्यादिक नीच पुरुषनि के बोलने के वचन प्राण जाते हू मति कहो। अधमपना अर उत्तमपना तो वचन ही तैं जाण्या जाय है, नीचनि के बोलने के नियवचनहू छोडि प्रिय हित मधुर पथ्य धर्मसहित वचन कहो। जे अन्यकू दुख का देने वाला वचन कहै है तथा झूठा कलङ्क लगावै है तिनके पापतै इहांही बुद्धि भ्रष्ट होय है, जिह्वा गलिजाय, अंधा हो जाय, पग नष्ट हो जाय, दुर्ध्यानतैं मरि नरक तिर्यंचादि कुगति का पात्र होय है। अर सत्य का प्रभावतैं इहां उज्ज्वल यश, वचन की सिद्धि, द्वादशाङ्गादि श्रुतका ज्ञान पाय फिर इन्द्रादिक महर्द्धिक देव होय तीर्थङ्करादि उत्तम पद पाय निर्वाण जाय है। यातैं उत्तम सत्यधर्महार धारण करो। ऐसैं सत्यनामा धर्म का वर्णन किया ॥ ४ ॥

उत्तम शौच धर्म

अब शौच धर्म का स्वरूप वर्णन करिये है। शौच नाम पवित्रता उज्ज्वलता का है। जो महात्मा दृढ़ का

उज्ज्वलता स्नानादिक करनेकूं शौच कहै हैं सो देह तो सप्त धातुमय मलमूत्र को भरयो जलतैं धोया शुचिपणाकूं प्राप्त नाहीं होय है। जैसे मलका बनाया घट मलका भरया जलतैं शुद्ध नाहीं होय तैसे शरीर हू उज्ज्वल जलतैं शुद्ध नाहीं होय, शुचि मानना वृथा है। बहुरि शौचधर्म तो आत्माकूं उज्ज्वल किए होय। आत्मा लोभकरि, हिंसाकरि अत्यन्त मलीन होय रह्या है। सो आत्मा के लोभ मल का अभाव भये शुचिता होय है। जो अपने आत्माकूं देहतैं भिन्न ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगमय, अखण्ड, अविनाशी, जन्मजरा मरण रहित, तीनलोकवर्ती समस्तपदार्थनि का प्रकाशक, सदा काल अनुभव करै है, ध्यावै है ताकै शौचधर्म होय है। बहुरि मनकूं मायाचार लोभादिक रहित उज्ज्वल करना ताकै शौचधर्म होय है। जाका मन काम लोभादिककरि मलीन होय ताकै शौच धर्म नाहीं होय है। धन की गृद्धिता जो अति लम्पटता ताका त्यागतैं शौचधर्म होय है।

बहुरि परिग्रह की ममताकूं छांडि इन्द्रियनिका विषयनि को त्यागकरि तपश्चरण का मार्ग प्रवर्तन करना सो शौच धर्म है। बहुरि ब्रह्मचर्य धारण करना सो शौचधर्म है। बहुरि अष्टमदकरि रहित विनयवानपना भी शौचधर्म है। अभिमानी मदसहित होय सो महामलीन है। ताकै शौच धर्म कैसे होय ? बहुरि वीतराग सत्य का परमागम अनुभव

शुद्धता कदाचित् नाहीं होय। अभक्ष्य-भक्षण करने वाले निका अर अन्याय का विषय तथा धन के भोगनेवालेनिका परिणाम ऐसे मलीन होय हैं जो कोटि वार धर्म का उपदेश अर समस्त सिद्धान्तनिकी शिक्षा बहुत वर्ष श्रवण करते हू कदाचित् हृदय म प्रवेश नाहीं करैं हैं, सो देखिये है। जिन कू पचास वरस शास्त्र श्रवण करते भये हैं तोहू धर्म का स्वरूप का ज्ञान जिनकू नाहीं है सो समस्त अन्याय का धन अर अभक्ष्य भक्षण का फल है। तातैं जो अपनी आत्मा का शौच चाहो हो तो अन्याय का धन मति ग्रहण करो अर अभक्ष्य भक्षण मति करो, परस्त्री की अभिलाषा मति करो। बहुरि परमात्मा क ध्यानतैं शौच है, अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्यागतैं शौचधर्म है।

जे पचपापनि मैं प्रवर्तने वाले हैं ते सदाकाल मलीन, हैं, जे पर क उपकारकू लोपै है ते कृतघ्नी सदा मलीन हैं, गुरुद्रोही, धर्मद्रोही, स्वामीद्रोही, मित्रद्रोही उपकारकू लोपने वाले हैं, तिनके पाप का संतान असख्यात भवनि मे कोडि तीर्थनिमे स्नानकरि, दानकरि दूर नाहीं होय है। विश्वास घाती सदा मलीन है। यातैं भगवान् के परमागम की आज्ञा प्रमाण शुद्ध सम्यग्दर्शन—ज्ञान चारित्रकरि आत्माकू शुचि करो। क्रोधादिक कषाय का निग्रह करि उत्तमक्षमादि गुण धारण करि उज्ज्वल करो। समस्त व्यवहार कपट रहित

उज्वल करो। परका विभव, ऐश्वर्य, उज्ज्वल यश, उत्तम विद्यादिक प्रभाव देखि, अदेखसकरूप मलीनता छांडि शौचधर्म अङ्गीकार करो। परका पुण्यका उदय देखि विषादी मति होइ। इस मनुष्य पर्यायकूं तथा इन्द्रिय ज्ञान बल आयु सम्पदादिकनिकूं अनित्य क्षणभंगुर जानि, एकाग्र चित्तकरि अपने स्वरूपमें दृष्टि धारि, अशुभभावनिका अभाव करि आत्माकूं शुचि करो। शौच ही मोक्षका मार्ग है, शौच ही मोक्ष का दाता है। ऐसे शौच नाम पंचम धर्म को वर्णन कियो ॥ ५ ॥

उत्तम संयम धर्म

अब संयम नाम धर्म का स्वरूप कहिये है। संयम का ऐसा लक्षण जानना—जो अहिंसा कहिये हिंसा को त्याग दया रूप रहना, हित, मित, प्रिय, सत्य वचन बोलना, पर के धनमें वाञ्छा का अभाव करना, कुशील का छांडना, परिग्रह त्यागना—ए पांच व्रत हैं। तिनमें पंचपापनि का एक देश त्याग सो अणुव्रत है, सकल त्याग सो महाव्रत है। इन पंचव्रतनिकूं दृढ धारण करना अर पंचसमिति पालना। तिनमें गमन की शुद्धता ईर्यासमिति है। वचन की शुद्धता सो भाषासमिति है, निर्दोष शुद्ध भोजन करना सो एषणासमिति है, शरीर, उपकरणादिक देखि शोधि धरना

उठावना धारना सो आदाननिक्षेपणा समिति है, मलमूत्रकफादिक मलनिकूं अन्य जीवनि के ग्लानि दु ख बाधादि नाहीं उपजै ऐसे क्षेत्र म क्षेपना सो प्रतिष्ठापनासमिति है। इन पच समितिनिका पालना अर क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनिका निग्रह करना, अर मन, वचन, काय, की अशुभ प्रवृत्ति—ए दण्ड हैं। इन तीन दण्डनिका त्याग अर विषयनि म दौडती पच इन्द्रियनिकूं वश करना जीतना सो सयम है।

भावार्थ—पचव्रतनिका धारण, पच समिति का पालन, कषायनिका निग्रह, दण्डनिका त्याग, इन्द्रियनिका विजयकूं जिनेन्द्र क परमागम मे सयम कह्या है। सो सयम बहुत दुर्लभ है। जिनकूं पूर्वक बांधे अशुभ कर्मनिका अतिमदपना होते मनुष्य-जन्म, उत्तम देश, उत्तमकुल, उत्तम जाति, इन्द्रियपरिपूर्णता, नीरोगता, कषायनिकी मदता होय अर उत्तमसगति अर जिनेन्द्र का आगमनि का सेवन अर सांचे गुरुनिका सयोग, सम्यग्दर्शनादि अनेक दुलभ सामग्री का सयोग होय तदि ससार देह भोगनितैं अतिविरक्तता के धारक मनुष्यकैं अप्रत्याख्यानावरण का क्षयोपशमतैं तौ देशसयम होय अर जाकै अप्रत्याख्यान अर प्रत्याख्यान दोऊ कषायनिका क्षयोपशम होय ताकै सकल सयम होय है। तातैं सयम पावना महादुर्लभ है। नरकगति मैं, तिर्यंच

गति म, दुरगति में तो सयम होय नाहीं, कोऊ तिर्यंचकै दशव्रत अपनी पर्याय माफिक कदाचित होय है। अर मनुष्य पर्याय में भी नीचकुलादिमें, अधमदेशनिमें, इन्द्रिय-विकल, अज्ञानी, रोगी, दरिद्री, अन्यायमार्गी, विषयानुरागी, तीव्रकषायी, निद्यकर्मी, मिथ्यादृष्टीनिकै सयम कदाचित् नाहीं होय है, तातैं सयमका पावना अतिदुर्लभ है। ऐसे दुर्लभ सयमकू हू पाय कोऊ मूढबुद्धि विषयनिका लोलुपी होय छाडैं तो अनन्तकाल जन्म मरण करता ससार में परिभ्रमण करै है।

जो सयम पाय छाडै है, सयमकू बिगाडै है ताकै अनन्तकाल निगोद में परिभ्रमण, त्रसस्थावरनि में भ्रमण करना होय, सुगति नाहीं होय। सयम पाय बिगाडने समान अन्य अनर्थ नाहीं है। विषयनिका लोभी होय करि जो सयमकू बिगाडै सो एक कौडी में चिंतामणि रत्न बेचै है, तथा ईंधन के अर्थि कल्पवृक्षकू छेदै है। विषयनि का सुख है सो सुख नाहीं, सुखाभास है, क्षणभंगुर है, नरकनि के घोर दुःखनि का कारण है। किंपाकफल जैसे जिह्वा का स्वाद मात्र मिष्ट लागै है पाछैं घोर दुःख, महादाह, सताप दय मरणकू प्राप्त करै है तैसे भोग किंचिन्मात्र काल तो अज्ञानी जीवनिकू भ्रमतैं सुखसा भासै है फिर अनन्तकाल अनन्तमरनि में घोर दुःख का भोगना है। यातैं सयम की

परम रचा करो। पांच इन्द्रियनिके विषयनिके सम्बन्धतैं रोकनेतैं सयम होय है। कषायनिका खंडनकरि सयम होय है। दुर्द्धरतप का धारणकरि सयम होय है। रसनिका त्यागकरि सयम होय है। मनके प्रमार के रोकनेकरि सयम होय है। महान कायक्लेशनिके सहने करि सयम होय है। उपवासादिक अनशन तपकरि सयम होय है। समस्त परिग्रह की लालसा का त्यागकरि सयम होय है। त्रस स्थावर जीवनि की रचा करना सो ही सयम है। मनके विकल्पनि के रोकनेकरि तथा प्रमादतैं वचनकी प्रवृत्ति के रोकनेकरि सयम होय है। शरीर के अग उपांगनिका प्रवर्तनके रोकनेकरि सयम होय है। बहुत गमन के रोकनेकरि सयम होय है। बहुरि दयारूप परिणामकरि सयम होय है। परमार्थका विचार करकै तथा परमात्मा का ध्यान करक संयम होय है। सयम करकै ही सम्यग्दर्शन पुष्ट होय। सयम ही मोच का मार्ग है। सयम बिना मनुष्य-भव शून्य है, गुणरहित है। सयम बिना यो जीव दुर्गतिनिकू प्राप्त भया। सयम बिना देह का धारना, बुद्धिका पावना, ज्ञान का आराधना करना समस्त वृथा है। सयम बिना दीचा धारणा, व्रत धारणा, मूड मुडावना, नग्न रहना, भेष धारणा ये समस्त वृथा हैं।

जातैं सयम दोय प्रकार है—इन्द्रिय सयम अर प्राणि सयम। जाकी इन्द्रिया विषयनितैं नाहीं रुकी अर नाक

छहकाय के जीवनि की विराधना नाहीं टली वाके बाह्य परीषह सहना, तपश्चरण करना, दीक्षा लेना वृथा है। संसार में दुखित जीवनि के संयम बिना कोऊ अन्य शरण नाहीं है। ज्ञानीजन तो ऐसी भावना भावैं हैं—जो संयम बिना मनुष्य जन्म की एक घटिका हू मति जाओ, संयम बिना आयु निष्फल है, यो संयम है सो इस भव में अर परभव में शरण है, दुर्गतिरूप सरोवर के शोषण करनेकू सूर्य है, संयम करके ही संसाररूप विषम वैरी का नाश होय। संसार-परिभ्रमण का नाश संयम बिना नाहीं होय। ऐसा नियम है जो अन्तरङ्ग में कषायनिकरि आत्मा मलीन नाहीं होन दे है अर बाह्य यत्नाचारी हुआ प्रमाद रहित प्रवर्ते है वाके संयम होय है। ऐसे संयम धर्म का वर्णन किया ॥६॥

उत्तम तप धर्म

अब तप धर्म का वर्णन करें हैं। इच्छा का निरोध करना सो तप है। तप च्यार आराधनानिमें प्रधान है। जैसे सुवर्णकू तपावने करि सोला ताव लगे, समस्त मल छांडि करके शुद्ध होय है तैसें आत्मा हू द्वादश प्रकार तप के प्रभाव करि कर्म-मल-रहित शुद्ध होय है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तो देहकू पञ्च अग्निकरि तपावै है तथा अनेक प्रकार काय के क्लेशादि तप कहै है सो तप नाहीं है। काय कू दग्ध किये

अर भार लिये रहा होय ? मिथ्यादृष्टि ज्ञानपूर्वक आत्माकू कमकलंकतें छुटावना नाहीं जानें हैं। कर्मकलंक रहित आत्मा तो भेदज्ञान पूर्वक अपने आत्मा का स्वभावकू अर रागद्वेष मोहादिरूप मैलकूं भिन्न करें है। जैसें राग द्वेष मोहरूप मल भिन्न हो जाय अर शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय आत्मा भिन्न हो जाय सो तप है। याहीतें कहे हैं—मनुष्य भव पाय जो स्व पर तत्वकू जाणता है तो मनमन्ति पंच इन्द्रियनिकू रोकि, विषयनितें विरक्त होय, समस्त परिग्रहकू छाडि, बन्ध करने वाली रागद्वेषमई प्रवृत्तिकू छाडि, पाप का आलम्बन छूटने के अर्थि ममता नष्ट करनेकू वनमें जाय तप करिये। ऐसा तप धन्य पुरुषनि के होय है।

संसारी जीव के ममता रूप बड़ी फांसी है, सो ममता रूप जाल में फंसा हुआ घोर कर्मकू करता महा पाप का बन्धकरि रोगादिक की तीव्र वेदनातें, अर स्त्री पुत्रादि समस्त कुटुम्ब का तथा परिग्रह का वियोगादिकतें उपज्या तीव्र आर्तध्यानतें मरण पाय दुर्गतिनि के घोर दु खनि कू जाय प्राप्त होय है। तपोधनकू प्राप्त होना दुर्लभ है। तप तो कोऊ महाभाग्य पुरुष पापनित विरक्त होय, समस्त स्त्री पुत्र-धनादिक परिग्रह तें ममत्व छाडि, परम धर्म के धारक वीत राग निर्ग्रन्थ गुरुनि का चरणनि का शरण पावै है अर गुरुनिकी पापकारि जाके अशुभ कर्मका उदय अति मन्द

होय, सम्यग्स्वरूप सूर्य को उदय प्रगट होय, संसार विषय भोगनिर्तें विरक्तता जाकें उपजी होय सो तप संयम ग्रहण करे है, अर जो एसा दुद्धर तपकूं धारण करकें हू कोऊ पापी विषयनिकी वाञ्छाकरि बिगाडै ताकें अनन्तानन्त काल में फिर तप नाहीं प्राप्त होय है। यातें मनुष्यभव पाय, तत्वनिका स्वरूप जानि, मनसहित पंच इन्द्रियनिकूं रोकि, वैराग्यरूप होय, समस्त संगकूं छांडि, वनमें एकाकी, ध्यान में लीन हुआ तिष्ठै सो तप है।

जहां परिग्रह में ममता नष्ट होय वाञ्छारहित तिष्ठना तथा प्रचण्ड काम का खण्डन करना सो बड़ा तप है। जहां नग्न दिगम्बररूप धारि शीतकी, पवनकी, आतापकी, वर्षाकी तथा डांस, मच्छर, मक्षिका, मधुमक्षिका, सर्प, बिच्छू इत्यादिकनिर्तें उपजी घोर वेदनाकूं शरीर अङ्गपरि सहना सो तप है। अर जो निर्जन पर्वतनि की विषम गुफानि में, भयङ्कर पर्वतनिके दराडनिमें तथा सिंह, व्याघ्र, रीछ, स्याली, चीता, हस्तीनिकरि व्याप्त घोर वनमें निवास करना सो तप है। तथा दुष्ट वैरी म्लेच्छ चोर शिकारी मनुष्य अर दुष्ट व्यंतरादिक देवनिकृत घोर उपसर्गनितें कम्पायमान नाहीं होना। धीरवीरपनातें कायरता छांडि वैर विरोध छांडि समताभावतें परमात्मा का ध्यान में लीन हुआ सहना सो तप है। बहुरि समस्त जीवनिकूं उलझाने वाले रागद्वेषनि

कृ जीतना, नष्ट करना सो तप है। बहुरि जो याचना रहित भिक्षाके अवसर में श्रावक का घर में नवधा भक्तिकरि हस्तमें धरचा खारा अलूणा कड़वा खाटा लूना चीकना रस नीरस, तिसमें लोलुपता अर संक्लेश रहित निर्दोष प्रासुक आहार एक बार भक्षण करना सो तप है। बहुरि जो पंच समिति का पालना अर मनवचनकायकू चलायमान नाहीं करना, अपना रागद्वेष रहित आत्मानुभव करना सो तप है। जो स्व पर तत्त्व की कथनीका निर्णय करना, च्यार अनुयोग का अभ्यासकरि धर्मसहित काल व्यतीत करना सो तप है। बहुरि अभिमान छांडि विनयरूप प्रवर्तना, कपट छांडि सरल परिणाम धारना, क्रोध छांडि क्षमा ग्रहण करना, लोभ त्याग निर्वाञ्छिक होना सो तप है। जाकरि कर्मका समूह का नाशकरि आत्मा स्वाधीन हो जाय सो तप है।

जो श्रुतका अर्थका प्रकाश करना, व्याख्यान करना, आप निरंतर अभ्यास करै, अन्यकू अभ्यास करावै सो तप है। तपस्वीनिका देवनिका इन्द्र स्तवन करै, भक्ति का प्रकाश करै, तप करि केवलज्ञान उत्पन्न होय है। तपका अचिन्त्य प्रभाव है। तप के माहि परिणाम होना अति दुर्लभ है। नरक तिर्यञ्च देवनिकै तपकी योग्यता ही नाहीं, एक मनुष्य गति में होय, मनुष्य में हू उत्तम कुल, जाति, बल, बुद्धि,

इन्द्रियनिकी पूर्णता जाके होय तथा विषयनिकी लालसा जाकै नष्ट भई ताकै होय है। तप द्वादश प्रकार है। जाकी जैसी शक्ति होय तिस प्रमाण धारण करो, बालक करो, वृद्ध करो, धनाढ्य करो, निर्धन करो, बलवान करो, निर्बल करो, सहाय सहित होय सो करो, सहाय रहित होय सो करो, भगवान् की प्ररूप्या तप किसीकै हू करनेकू अशक्य नाहीं है। जैसे वायु, पित्त कफादिका प्रकोप नाहीं होय, रोग की वृद्धि नाहीं होय, जैसे शरीर रत्नत्रय को सहकारी बन्यौ रहै तैसें अपना संहनन बल वीर्य देखि तप करो। तथा देश काल आहार की योग्यता देखि तप करो। जैसैं तप में उत्साह बधतो रहै, परिणामनि म उज्ज्वलता बधती जाय, तैसें तप करो। तथा जो इच्छाका निरोधकरि विषयनि म राग घटावना सो तप है। तप ही नीरका कल्याण है, तप ही कामकू निद्राकू प्रमादकू नष्ट करने वाला है। यातैं मद छाडि, बारह प्रकार तपमे जैसा जैसा करनेकू सामर्थ्य होय तैसा ही तप करो। ऐसैं तपधर्म का वर्णन किया ॥७॥

उत्तम त्याग धर्म

अब त्याग धर्मका वर्णन करैं हैं। त्याग ऐसे जानना'— जो सपदादि परिग्रह कर्मका उदयजनित पराधीन अर विनाशीक अर अभिमान को उपजावने वाली, तृष्णाकू

बधावने वाली, रागद्वेष की तीव्रता करनेवाली, हिंसादिक पंच पापनिका मूल जानि उत्तम पुरुष याहू अंगीकार ही नाहीं किया ते धन्य हैं। जो कोई याहू अंगीकार करि याहू हलाहल-विष समान जानि जीर्ण तृण की ज्यों त्याग किया तिनकी अचिंत्य महिमा है। अर इह जीवनि के तीव्र राग भाव मन्द हुआ नाहीं यातैं सकल त्यागनेकूं समर्थ नाहीं, अर सागारधर्म में रुचि धारैं हैं अर पापतैं भयभीत हैं ते इस धनकूं उत्तम पात्रनिके उपकारक अर्थि दान में लगावैं हैं, अर जे धर्मके सेवन करने वाले निर्धन जन हैं तिनके अन्न वस्त्रादिककरि उपकार करने में धन लगावैं हैं तथा धर्म के आयतन जिनमन्दिरादिकनि में जिनसिद्धान्त लिखाय देनेमें तथा उपकरण में, पूजनादिक प्रभावना में लगावैं हैं तथा दुःखित दरिद्री रोगीनि के उपकार में तन मन धन करुणा वान होय लगावैं हैं ते धन जीतव्यकूं सफल करैं हैं। दान है सो धर्म का अंग है। यातैं अपनी शक्ति प्रमाण भक्ति करि गुणनि के धारक उज्ज्वल पात्रनिकौ दान देना है सो परलोकमें जावतै महान् सुखसामग्रीकूं ले जावै है, सो निर्विघ्न स्वर्ग तथा भोगभूमिकूं प्राप्त करने वाला जानों।

दानकी महिमा तो अज्ञानी बालगोपाल हू कहै है। जो पूर्व दान दिया है सो नानाप्रकार सुखसामग्री पाई है, अर देगा सो पावैगा। तातैं जो सुख-सम्पदा का अर्थी होय सो

गन ही में अनुराग करो। [illegible]
है तो इहाहू तात्र आनन्दनि [illegible]
गति पाव नाग निगाड़े [illegible]
लार जायगा ? धन पावना [illegible]
रहित या धन थोग दु [illegible]
इहां हू कृपण घोरनिंदा [illegible]
नाश करे है । कृपण धन [illegible]
है । जामें यांगुण दोष हू [illegible]
है । मानी या दोष [illegible]
रीति जगमें विख्यात होय है । [illegible]
है, अपना हित करने वाला [illegible]
दान बडा है । थोडासा [illegible]
वाला भोग भूमिका तीन [illegible]
म जाय है । दान बना ही [illegible]
मधुर स्नेह का वचनकरि [illegible]
ते ऐसा अभिमान नाश करै है [illegible]
है । दानी तो पात्रकू [illegible]
हैं ? जा लोभ स्य [illegible]
कौन करै, पात्रविना [illegible]
विना समार के उद्धार [illegible]
धर्मामाननानि के तो पात्र [illegible]

देने समान अन्य कोऊ आनन्द नाहीं है । उदारपना धनी उत्तमपना, ज्ञानीपना पाया है तो दान मही उद्यम करो । छहकाया के जीवनिकू अभयदान देहु, अभक्ष्य का त्यागकरि बहु आरम्भ के घटावनेकार देखि सोधि मेलना, धरना, यत्नाचार बिना निर्दयी होय नाहीं प्रवर्तना । किसी प्राणी मात्र मन वचन कायतें दुखित मति करो । दुखिनि की करुणा ही करो, यो ही गृहस्थ के अभयदान है । यातैं संसार मे जन्म, मरण, रोग, शोक, दारिद्र, वियोगादिक संताप का पात्र नाहीं होओगे ।

बहुरि संसार के बधावने वाले, हिंसाकू पुष्ट करने वाले तथा मिथ्या धर्म की प्ररूपणा करने वाले तथा युद्धशास्त्र, शृङ्गारशास्त्र, मायाचार के शास्त्र, वैद्यकशास्त्र, रस रसायण मंत्र तंत्र मारण वशीकरणादिक शास्त्र ... के ... हैं । इनकू अति दूरतैं ही त्यागि भगवान ...

कह्या, दयाधर्मकू अर ...

का प्रकाश करने ...

करने वाले शास्त्रनिकू ...

आत्मा का उद्धार के ...

सन्तानकू ज्ञानदान ...

इनकू तिनकू ...

दानके अर्थि पाठशाला ...

ज्ञान हो है। जहां ज्ञानदान होयगा तहां धर्म रहैगा, यातैं ज्ञानदान में प्रवर्तन पावै है।

बहुरि रोग का नाश करने वाला प्रासुक औषधि का दान करो। औषध दान बड़ा उपकारक है अर रोगीकूं तैयार औषधि मिलै है ताका बड़ा आनन्द है। अर निर्धन होय तथा जाका टहल करने वाला नाहीं होय, ताकूं औषध जो करी हुई तय्यार मिल जाय तो निर्धनिका लाभसमान मानै है, औषध लेय निरोग होय है सो समस्त व्रत, तप, संयम पालै है, ज्ञान का अभ्यास करै है। औषधदान है ताकूं वात्सल्यगुण स्थितिकरणगुण, निर्विचिकित्सागुण इत्यादिक अनेक गुण प्रगट होय हैं। औषधिदान के प्रभावतैं रोगरहित देवनिका वैक्रियिक देह पावै है।

बहुरि आहारदान समस्त दाननिमें प्रधान है। प्राणनिका जीवन शक्ति बल बुद्धि व समस्त गुण आहार बिना नष्ट हो जाय है। आहार दिया सो प्राणनिकूं जीवन बुद्धि शक्ति समस्त दाना। आहारदाननैं ही मुनि श्रावक का सकल धर्म प्रवर्ते है। आहार बिना मार्ग भ्रष्ट हो जाय। आहार है सो समस्त रोग का नाश करने वाला है। जो आहार दान दे है सो मिथ्यादृष्टि हू भोगभूमि में कल्पवृक्षनि का दशप्रकार भोगकूं असंख्यात काल भोगि और क्षुधातृषादिक की बाधा रहित हुया आंवलाप्रमाण तीन दिनके आहार भोजन करै।

समस्त दु:खक्लेशरहित असंख्यातवर्ष सुख भोगि देवलोकनि में जाय उपजें हैं। यातैं धनकूं पाय च्यार प्रकार के दान देने में प्रवर्तन करो। अर जो निर्धन है सो हू अपना भोजन में तैं जेता बनैं तेता दान करो। आपकूं आधा भोजन मिलै तीमैं तैं हू ग्रास दोयग्राम दु:खित बुभुक्षित दीन दरिद्रीनि के अर्थ देवा।

बहुरि मिष्टवचन बोलने का बड़ा दान है, आदर सत्कार विनय करना, स्थान देना, कुशल पूछना ये महादान हैं। बहुरि दुष्ट विकल्पनि का त्याग करो, पापनि में प्रवृत्ति का त्याग करो, चार कषायनिका त्याग करो, विकथा करने का त्याग करो, परके दोष सत्य, असत्य कदाचित् मति कहो। बहुरि अन्याय का धन ग्रहण करने का दूर ही तैं त्याग करो। भो ज्ञानीजन हो! जो अपना हित के इच्छुक हो तो दु:खिजननिकूं तो दान करो, अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादि गुणनि के धारकनि का महाविनय सन्मान करो, समस्त जीवान में करुणा करो, मिथ्यादर्शनका त्याग करो, रागद्वेषमोह के धारक कुदेव अर आरम्... धारक भेषधारी, अर हिंसा के पोषक ... वाले, मिथ्यादृष्टिनि के शास्त्र ... करने का त्याग करो ... निग्रह करने में बड़ा

अप्रिय वचन, गाली के वचन, अपमान के वचन, मदसहित वचन कदाचित् मति कहो। इत्यादिक जो पर के दुःख के कारण तथा अपना यशकू नष्ट करने वाला, धर्मकू नष्ट करन वाला मन, वचन, कायके प्रवर्तन का त्याग करो। ऐसे त्यागधर्म का संक्षेप वर्णन किया ॥ ८ ॥

उत्तम आकिंचन्य धर्म

अब आकिंचन्य धर्म का स्वरूप कहिये है। जो अपना ज्ञानदर्शनमय स्वरूप बिना अन्य किंचित्मात्र हू हमारा नाहीं है, मैं किसी अन्य द्रव्य का नाहीं हूँ, मेरा कोई अन्य द्रव्य नाहीं है, ऐसा अनुभवनकू आकिंचन्य कहिये है। सो आत्मन्! अपना आत्माकू देहतें भिन्न अर ज्ञानमय अन्य द्रव्य की उपमारहित अर स्पर्शरसगंधवर्णरहित अर अपना स्वाधीन ज्ञानानन्दसुखरूप पूर्ण परम अतीन्द्रिय मय रहित ऐसा अनुभव करो।

भावार्थ—यह देह है सो मैं नाहीं, देह तो रस रुधिर हाड़ मांस चाममय जड़ अचेतन है। मैं इस देहतें अत्यन्त भिन्न हूँ, ये ब्राह्मण क्षत्रियादिक जाति-कुल देह के हैं, मेरे ये नाहीं हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंग देहके हैं, मेरे नाहीं। जो गोरापना, सांवलापना, राजापना, रंकपना, स्वामिपना, सेवकपना, पंडितपना, मूर्खपणा इत्यादि समस्त रचना कर्म

। उदयजनित देह के हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ। ये देह का
म्बन्धी मेरा स्वरूप नाहीं है, मेरा स्वरूप अन्य द्रव्य का
पमारहित है। ताता, ठंडा, नरम, कठोर, लूखा, चीकना,
लका भारी अष्ट प्रकार स्पर्श हैं ते हमारा रूप नाहीं, पुद्गल
रूप हैं। ये खाटा, मीठा, कडवा, कषायला, चिरपरा पंच
कार रस, अर सुगन्ध दुर्गन्ध दोय प्रकार का गंध, अर
काला, पीला, हरा, श्वेत, रक्त ये पंच वर्ण मेरा स्वरूप
नाहीं, पुद्गल का है। मेरा स्वभाव वो सुमकरि परिपूर्ण
है, परन्तु कर्म के आधीन दुखकरि व्याप्त होय रह्या हूँ। मेरा
स्वरूप इन्द्रिय रहित अतींद्रिय है। इन्द्रिया पुद्गलमय कर्म-
करि की हुई हैं, मैं समस्त भय रहित, अविनाशी, अखंड,
आदि-अंतरहित, शुद्ध ज्ञानस्वभाव हूँ परन्तु अनादिकालतैं
जैसे सुवर्ण अर पाषाण मिल रह्या है तैसे, तथा क्षीर-नीर
ज्यों कर्मनि करि अनादिका मिल रह्या हूँ। तिनिमें हूँ
मिथ्यात्वनाम कर्म का उदयकरि अपना स्वरूप का ज्ञान
रहित होय देहादिक परद्रव्यनिकूं अपना स्वरूप जानि
अनंतकालतैं परिभ्रमण किया। अब कोऊ किंचित् आवर-
णादिक के दूर होन तैं श्रीगुरुनिका उपदेश्या परमागम के
प्रसादतैं अपना अर परका स्वरूप का ज्ञान भया है। जैसे
रत्ननिके व्यापारी जडे हुए पंच वर्ण रत्ननि के आभरणनि
में गुरु की कृपातैं अर निरन्तर अभ्यासतैं मिल्या हुआह

हीराका रंग अर माणिक्य का रंगकूं अर तोलकूं अर मोलकूं भिन्न २ जाने है तैसे परमागमका निरंतर अभ्यासतैं मेरा ज्ञान स्वभाव में मिल्या हुआ राग द्वेष मोह कामादिक मैलकूं भिन्न जाण्या है, अर मेरा ज्ञायक स्वभाव को भिन्न जाण्या है। तातैं अब जैसे रागद्वेषमोहादिक भाव कर्मनि में अर कर्मनिके उदयतैं उपजे विनाशीक शरीर परिवार धन मकानादि परिग्रह में ममता बुद्धि मेरे जैसे फिर अन्य जन्म में हूँ नाहीं उपजै तैसें आकिंचन्य भाऊं।

या आकिंचन्य भावना अनादिकालतैं नाहीं उपजी। समस्त पर्यायनिमें अपना रूप मान्या तथा रागद्वेषमोह-क्रोधकामादिक भाव कर्मकृत विकार थे तिनकूं आपरूप अनुभवकरि विपरीत भावनितैं घोर कर्मबन्धकूं कीया। अब मैं आकिंचन्य भावना में विघ्नका नाश करने वाला पंच परमगुरुनिका शरणतैं आकिंचन्य ही निर्विघ्न चाहूं हूं और त्रैलोक्य में कोऊ अन्यवस्तु कूं नाहीं वाछूं हूं। यो आकिंचन्यपणा ही संसारसमुद्रतैं तारणेकूं जिहाज होहु। जो परिग्रहकूं महाबन्ध जानि छांडना सो आकिंचन्य है। आकिंचन्यपणा जाकै होय है ताकै परिग्रह में वाछा नाहीं रहै है, आत्मध्यान में लीनता होय है, देहादिकनि में वाह्यचेप में आपो नाहीं रहै है, अर अपना स्वरूप जो रत्नत्रय तामें प्रवृत्ति होय है, इन्द्रियनिके विषयनिमें दौड़ता

मन रुकि जाय है, देहतै स्नेह छूटि जाय, सांसारिक दवनिका सुख, इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्तीनिका सुख हू दुख दीखै है। इनमें वांछा कैसे करै। परिग्रह रत्न सुवर्ण राज्य ऐश्वर्य स्त्री पुत्रादिकनिकू जीर्णतृण में जैसें ममतारहित छाडनेमें विचार नाहीं तैसे परिग्रह छाडै है। आकिंचन्य तो परम वीतरागपणा, है जिनकै संसारको अंत आ गयो तिनकै होय है।

जाकै आकिंचन्यपणा होय तातै परमार्थ होय, ताकै परमार्थ जो शुद्ध आत्मा ताका विचारनेकी शक्ति प्रगट होय ही, अर पंचपरमेष्ठी मैं भक्ति होय ही, अर दुष्ट विकल्पनिका नाश होय ही, अर इष्ट अनिष्ट भोजन मे रागद्वेष नष्ट हो जाय है, केवल उदररूप खाडा भरना, अन्य रस नीरस भोजनमें विचार जाता रहे है। समस्त धर्मनिमे प्रधान धर्म आकिंचन्य ही मोक्षका निकट समागम करानेवाला है। अनादिकालतै जेते सिद्ध भए है ते आकिंचन्यतै ही भये हैं अर आगैं जो जो तीर्थंकरादि सिद्ध होंगे तो आकिंचन्यपणा हीतैं होंगे। यद्यपि आकिंचन्यधर्म प्रधानकरि साधुजननिकै ही होय है तथापि एकदेश धर्मका धारक गृहस्थ उस धर्मके ग्रहण करनेकी इच्छा करै है अर गृहाचारमें मंदरागी होय अतिविरक्त होय है, प्रमाणीक परिग्रह धारै है, आगामी वांछारहित है, अन्यायका धन परिग्रह

कदाचित् ग्रहण नाहीं करै है, अल्प परिग्रहम अति संतोषी होय रहैं हैं। परिग्रहकूं दुःखका देनेवाला अर अत्यन्त अस्थिर मानैं हैं, ताकै ही आकिंचन्यभावना होय हैं। ऐसैं आकिंचन्यधर्मका वर्णन किया ॥९॥

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

अब उत्तम ब्रह्मचर्यका स्वरूप कहिए हैं—समस्त विषयनिमें अनुराग छांड करकैं ब्रह्म जो ज्ञायकस्वभाव आत्मा तामें जो चर्या कहिये प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है। भो ज्ञानीजन हो! या ब्रह्मचर्य नाम व्रत बडो दुर्द्धर है, इतर बापडा विषयनिके वश हुआ आत्मज्ञान रहित हैं ते याकूं धारवेकूं समर्थ नाहीं हैं। जे मनुष्यनिमें इन्द्र समान हैं ते धारवेकूं समर्थ हैं, अन्य रंक विषयनिकी लालसाके धारक ब्रह्मचर्य धारनेकूं समर्थ नाहीं हैं। यो ब्रह्मचर्यव्रत महादुर्द्धर है, जाकै ब्रह्मचर्य होय ताकैं समस्त इन्द्रिय अर कषायनिका जीतना सुलभ है।

भो भव्य हो! स्त्रीनिका मुख मे राजी मनरूप मदोन्मत्त हस्ती ताकूं वैराग्यभावनासे रोकि करकै, अर विषयों की आशाका अभाव करकैं, दुर्द्धर ब्रह्मचर्य धारण करो। यो काम है सो चित्तरूप भूमिमें उपजै है, यातैं पीडाकरि नाहीं करने योग्य ऐसे पाप करै है। यातैं यो काम

मनकूं मथन करै है, मनको ज्ञानकूं नष्ट करै है, यातैं याकूं मनमथ कहिये है। शील नष्ट हो जाय तदि ही स्त्रीनिका महादुर्गन्ध निंद्य शरीरकूं रागी हुआ सेवे है। अर कामकरि अंध हो जाय तदि महा अनीतिकूं प्राप्त होय अपनी परकी नारी का विचार हो नाहीं करै है—जो इस अन्यायतैं मैं इहा ही मारा जाऊगा, राजा का तीव्रदण्ड होयगा, यश मलीना होयगा, धर्म भ्रष्ट होजाऊगा, मत्या बुद्धि नष्ट हो जायगी, मरणकरि नरकनिमे घोर दु ख असंख्यातकाल पर्यंत भोगि फिर असंख्यात तिर्यंचनिके दु खरूप अनेकभव पाय कुमानुषनिमैं अन्धा, लूला, कूबडा, दरिद्री, इन्द्रियविकल, बहरा, गूंगा, तथा अपाहिज, कुल नीच में उपजि फिर त्रस—स्थावरनिमे अनन्तकाल परिभ्रमण करूंगा—ऐसा सत्य विचार कामीकै नाहीं उपजै है। इस कामके नाम ही जगतकै जीवनिकूं प्रगट करै हैं। क कहिये खोटा दर्प अर्थात् गर्व उपजावै तातैं कदर्प कहिये है। अति कामना जो वाछा उपजाय दु खित करै तातैं याकू काम कहिये है। याकरि अनेक तिर्यंचनिके तथा मनुष्यनि के मरनिमे लड़ि-लड़ि मरिय तातैं मार कहिये है। सबरको बैरी तातैं सबरारि कहिय। मद्य जो तप सयम तातैं सुव्रति कहिये चलायमान करै मशा़ कहिये। इत्यादिक अनेक दोषनिकू नाम ही कहै हैं। या जानि

मनवचनकायतैं अनुरागकरि ब्रह्मचर्य व्रत पालो। ब्रह्मचर्यकरि सहित ही संसारके पार जावोगे। ब्रह्मचर्य बिना व्रत तप समस्त असार है। ब्रह्मचर्य बिना सकल कायक्लेश निष्फल है। बाह्य जो स्पर्शनइन्द्रियका सुखतें विरक्त होय, अभ्यन्तर परमात्मस्वरूप आत्मा ताकी उज्ज्वलता देखहु। जैसे अपना आत्मा कामके रागकरि मलीन नाहीं होय तैंसे यत्न करो। ब्रह्मचर्यकरि ही दोऊ लोक भूषित होय है।

बहुरि जो शीलकी रक्षा चाहो जो अर उज्ज्वल यश चाहो हो अर धर्म चाहो हो अर अपनी प्रतिष्ठा चाहो हो तो चित्तमें परागमागमकी शिक्षा इस प्रकार धारण करो— स्त्रीनि की कथा मति श्रवण करो, मति कहो। स्त्रीनिका राग-रंग कुतूहल चेष्टा मति देखो। ये मेला देखना परिणाम बिगाड़ै है। व्यभिचारी पुरुषनिकी सङ्गतिका त्याग करना, भांग जरदा मादकवस्तु भक्षण नाहीं करना, ताम्बूल तथा पुष्पमाला अतर फुलेलादि शीलभङ्ग, व्रतभङ्गके कारण दूरतैं टालो, गीतनृत्यादि कामोद्दीपनके कारणनिका परिहार करो, रात्रिभक्षण टालो, विकार करनेका कारण लोकविरुद्ध वस्त्र आभरण मति पहरो, एकान्तमें कोऊ ही स्त्री मात्र का संसर्ग मति करो, रसना इन्द्रिय की लम्पटता छाडो। जिह्वाकी लम्पटताकी लार हजारां दोष आवै है यातैं समस्त ऊ चापणो यश धर्म नष्ट हो जाय है। जिह्वा इन्द्रियका

लम्पटीक सन्तोष नष्ट होजाय, समभावतू स्वप्नमें हू नाहीं जानैं, लोक परलोक भ्रष्ट हो जाय। ब्रह्मचर्य भङ्ग होजाय यातैं आत्माके हितका इच्छुक एक ब्रह्मचर्यही ही रक्षा करो।

ऐसें धर्मके दशलक्षण सर्वज्ञ भगवान ने कहे हैं। जाके ये दश चिन्ह प्रगट होय ताकू धर्म है। उत्तमक्षमादिकनिकें घातक धर्मके वैरी क्रोधादिक हैं, तिनतैं अनेक दोष उपजै हैं, तिनको दूर करो। अर क्षमादिकनिमें अनेक गुण हैं तिनकी भावना बारम्बार सदैव भावो।

उपसंहार

जो क्षमा है सो अपना प्राणनिकी रक्षा है, धनकी रक्षा है, यशकी रक्षा है, धर्मकी रक्षा है, व्रतशीलसंयम सत्यकी रक्षा एक क्षमातैं ही है, कलहके घोर दुखतैं अपनी रक्षा एक क्षमा ही करै है। समस्त उपद्रव तथा वैरतैं क्षमा ही क्षमा करै है, बहुरि क्रोध है सो धर्म अर्थ काम मोक्षका मूलतैं नाश करै है, अपना प्राणनिका नाश करै है, क्रोधतैं प्रचण्ड रौद्रध्यान प्रगट होय है। क्रोधी एक क्षणमात्रमें आप मरि जाय है, कूवामें बावड़ी मे तालाब नदी समुद्रमे डूबि मरै है, शस्त्रघात, विषभक्षण, झम्पापातादि अनेक कुकर्मकरि आत्मघात करै हैं। अन्यके मारनेकी क्रोधीके दया नाहीं होय सो अपने पिता कू

पुत्रकूं, भ्राताकूं, मित्रकूं, स्वामीकूं, सेवककूं, गुरुकूं, एक क्षणमात्रमें मारै है। क्रोधी घोर नरक का पात्र है। क्रोधी महा भयङ्कर है, समस्तधर्मका नाश करनेवाला है। क्रोधी के सत्यवचन नाहीं होय है, आपकूं अर धर्मकूं समभावकूं दग्ध करनेवाला दुर्वचनरूप अग्निकूं उगलै हैं। क्रोधी होय सो धर्मात्मा, सयमी, शीलवान मुनि अर श्रावकनिकूं चोरी अन्यायकूं झूठे दोष कलंक लगाय दूषित करै हैं। क्रोध के प्रभावतें ज्ञान, कुज्ञान होय है, आचरण विपरीत होजाय, श्रद्धान भ्रष्ट होजाय, अन्यायमें प्रवृति होजाय है, नीतिका नाश होय है, अति हठी होय विपरीत मार्गका प्रवर्तक होय है, धर्म-अधर्म, उपकार-अपकारका विचार रहित कृतघ्नी होय है। यातैं वीतरागधर्म के अर्थी हो तो क्रोध मारहु कदाचित् प्राप्त मति होहु।

बहुरि मार्दव जो कठोरतारहित कोमल परिणामी जीव में गुरुनिका बड़ा अनुग्रह वर्तै है। मार्दव परिणामीकूं साधुपुरुष हू साधु मानै हैं, तातैं कठोरतारहित पुरुष ही ज्ञानका पात्र होय है। मानरहित कोमल परणामीकूं जैसा गुण ग्रहण कराया चाहैं तथा जैसी कला सिखाया चाहैं तैसी कला गुण प्राप्त हो जाय है। समस्त धर्म का मूल समस्त विद्याका मूल विनय है। विनयवान समस्तके प्रिय होय है। अन्य गुण जामें नाहीं होय सो पुरुष हू विनयवै-

मान्य होय हैं। विनय परम आभूषण है। कोमल परिणाम में ही दया वसै है। मार्दवतें स्वर्गलोककी सम्पदा, निर्वाणकी अविनाशीक सम्पदा प्राप्त होय है। अर कठोर परिणामीकू शिक्षा नाहीं लागे है। साधु पुरुष हैं तिनका परिणाम हू अविनयी कठोर परिणामीकू दूरहीतैं त्यागा चाहै है। जैसैं पाषाणमें जल नाहीं प्रवेश करै तैसैं मद्गुरुनिका उपदेश कठोर पुरुष का हृदयमें प्रवेश नाहीं करै है। जातैं जो पाषाण काष्ठादिक हू नरमाई लिए होय ताका तो वाल वाल मात्र हू जहां घस्या चाहैं, छील्या चाहैं, तहां वालमात्र ही उतरि आवे, तदि जैसी सूरत मूरत बनाया चाहैं तैसैं ही बनै है। अर कोमलता रहितमें जहां टांची लगावे तहां विदर उतरि दूर पड़े, शिल्पीका अभिप्राय माफिक घडाई में नाहीं आवैं। तैसैं कठोर परिणामीकू यथावत् शिक्षा नाहीं लागै, अभिमानीका समस्त लोक विना किया वैरी होय है, परलोकमें अति नीच तिर्यंच अर मनुष्यनि में असंख्यातकाल नाना तिरस्कारका पात्र होय है। यातैं कठोरता त्यागि मार्दवभावना ही निरन्तर धारण करो।

बहुरि कपट समस्त अनर्थनिका मूल है, प्रीति अर प्रतीतिका नाश करनेवाला है, कपटी में असत्य छल निर्दयता विश्वासघातादि समस्त दोष वसैं है, कपटीमें गुण

नाहीं, समस्त दोषहो दोष वास करै है । मायाचारी यहां अपयश पाय तिर्यंच नरकादिक गतिनिमैं असंख्यात काल भ्रमण करै है । मायाचाररहित आर्जवधर्मका धारण मैं समस्त गुण वसैं हैं, समस्त लोकनिके प्रीतिका अर प्रतीतिका कारण होय हैं, परलोकमैं देवनिकरि पूज्य इन्द्र अहमिन्द्रादिक होय हैं यातैं सरलपरिणाम ही आत्माका हित है। बहुरि सत्यवादी मे समस्त गुण तिष्ठै हैं, मदाकाल अपवादि दोषरहित जगतमे मान्यताहू हू प्राप्त होय है। अर परलोकमे अनेक देव-मनुष्यादिक जाकी आज्ञा मस्तक ऊपर धरै हैं । अर असत्यवादी इहां ही अपवाद निन्दा करने योग्य होय है, समस्त क अप्रतीतिका कारण है, बान्धव-मित्रादिक हू अपना करि छाडै हैं, राजानिकरि जिह्वाछेद सर्वस्व-हरणादिक दण्ड पावै हैं, अर परलोकमें तिर्यंच गति में वचन-रहित, एकेन्द्रिय, विकलत्रयादि असख्यात पर्याय धारै हैं । यातै सत्यधर्मका धारण ही श्रेष्ठ है ।

बहुरि जाका शुचि आचरण होय सो ही जगत मे पूज्य है । शुचि नाम पवित्रता उज्ज्वलताका है । जाकी आहार विहारादिक समस्त प्रवृत्ति हिंसारहित अर हिंसा का भय तैं यत्नाचारसहित होय, अर अन्य के धन मे, अन्य की स्त्रीमैं कदाचित् स्वप्न मे वाछा नाहीं होय सो ही उज्ज्वल आचरण को धारक है । तिसका ही जग-

पूज्य माने हैं। निर्लोभी का समस्त लोक विश्वास करै है, सो ही लोक में उत्तम है, उच्चलोकका पात्र है। लोभ रहित का सदा उज्ज्वल यश प्रकट है। लोभी महामलीन समस्त दोषनिका पात्र है, नियकर्म में लोभी की प्रीति होय है। लोभी के पाप-मयाप, न्याय-अन्याद, कृत्य-अकृत्य का विचार ही नाहीं होय है, इहां हू लोक में निन्दा, धर्मतें पराङ्मुखता निर्दयता प्रकट दखिये हैं। लोभी धन अर कामकूं नष्टकरि कुमरणकरि दुर्गति जाय है। लोभीका हृदय में गुण अवकाश नाहीं पावै है। इस लोकमें परलोक में लोभीकूं अचिन्त्य क्लेश दुःख प्राप्त होय है, यातें शौच-धर्मका धारण ही श्रेष्ठ है।

बहुरि संयम ही आत्मा का हित है। इस लोक में संयमका धारक समस्त लोकनिके वन्दने योग्य होय है। समस्त पापनिकरि नाहीं लिपै है। याकी इसलोकमें परलोक में अचिन्त्य महिमा है। अर असंयमी है सो प्राणनिका घात अर विषयनिमें अनुरागकरि अशुभ कर्म का बन्ध करै है। यातैं संयम धर्म ही जीव का हित है। बहुरि तप है सो कर्मका संवर निर्जरा करनेका प्रधान कारण है आत्माकूं कर्ममलरहित करै, तपका प्रभावतैं बहां ऋद्धि प्रकट होय है। तपका अचिन्त्यप्रभाव है कामका निद्राका कौन मारै? ... बांछाकूं

इन्द्रियनिके विषयनि को मारने में तप ही समर्थ है। आशारूप पिशाचणी तपहीतैं मारी जाय है। कामका विजय तपहीतैं होय है। तपका साधन करनेवाला परीषह उपसर्ग आवते हू रत्नत्रयधर्मतैं नाहीं छुटै। यातैं तपधर्म ही धारण करना उचित है। तपबिना संसारतैं छूटना नाहीं है। जातैं चक्रीपनाका हू राज्य छाडि तप धारैं तो त्रैलोक्य में वन्दनेयोग्य पूज्य होय है। अर तपकू छाडि राज्य ग्रहण करै सो अतिनिंद्य थुथुकार करने योग्य होय, तृणतैं हू लघु होय। यातैं त्रैलोक्य में तप-समान महान् अन्य नाहीं।

बहुरि परिग्रह समान भार नाहीं, जेते दुःख, दुर्ध्यान, क्लेश, वैर, वियोग, शोक, भय, अपमान हैं ते समस्त परिग्रह के इच्छुककै हैं। जैसैं २ परिग्रहतैं परिणाम निराला होय तैसैं २ खेदरहित होय है। जैसे बडा भारकरि दुःखित पुरुष भाररहित होय तदि सुखित होय, तैसैं परिग्रहकी वासना मिटै सुखित होय है। समस्त दुःख अर समस्त पापनिका उपजावनेका स्थान यह परिग्रह है। जैसैं नदीनिकरि समुद्र तृप्त नाहीं होय अर ईंधनकरि अग्नि तृप्त नाहीं होय है तैसे आशारूप खाडा बडा अगाध है, जाका तलस्पर्श नाहीं, ज्यों ज्यों यामें धरो त्यों त्यों खाडा बधता जाय, जो आशारूप खाडा निधिनितैं नाहीं भरै सो अन्य संपदातैं कैसे भरै? अर ज्यों ज्यों परिग्रहकी आशा का त्याग

फरो त्यो त्यों भरतो चल्या जाय, तातैं समस्त दु ख दूरि करनेकू त्याग ही समर्थ है। त्यागहीतैं अन्तरङ्ग बहिरङ्ग बंधनरहित अनन्तसुखके धारक होऊगे। परिग्रहके बंधनमें बंधे जीव परिग्रह त्यागतैं ही छूटि मुक्ति होय। तातैं त्याग धर्म धारण ही श्रेष्ठ है। बहुरि हे आत्मन्! यो देह अर स्त्री पुत्र धन धान्य राज्य ऐश्वर्यादिकनिमें एक परमाणुमात्र हू तुम्हारा नाहीं है। पुद्गलद्रव्य हैं, जड़ विनाशीक हैं, अचेतन हैं, इन परद्रव्यनिमैं 'अहं' ऐसा संकल्प तीव्र दर्शनमोहकर्मका उदय विना कौन करावै? इस परद्रव्य में आत्मसंकल्प मेरे कदाचित् मति होहु, मैं अकिंचन हू। या आकिंचन्य भावना के प्रभावतैं कर्म का लेपरहित बहा ही समस्त बंधरहित हुआ तिष्ठै है, साक्षात् निर्वाण का कारण आकिंचन्यधर्म ही धारण करो।

बहुरि कुशील महापाप है, संसार परिभ्रमण का बीज है। ब्रह्मचर्य के पालने वालेतैं हिंसादिक पापनिका प्रचार दूरि भागै है, समस्त गुणनिकी संपदा यामें बसै है, जितेंद्रियता प्रकट होय है। ब्रह्मचर्यतैं कुल-जातादि भूषित होय है, परलोक मे अनेक ऋद्धिका धारक महर्द्धिक देव होय है।

ऐसैं भगवान अरहंत देवाधिदेवके मुखारविंदतैं प्रकट हुआ दशलक्षण धर्म आत्माका स्वभाव है, पर वस्तु नाहीं

है, क्रोधादिक कर्मजनित उपाधि दूरि होतें स्वयमेव आत्मा का स्वभाव प्रगट होय है। क्रोधके अभावतें क्षमागुण प्रगट होय है, मानके अभावतें मार्दवगुण प्रगट होय है, मायाके अभावतें आर्जवगुण प्रगट होय है, लोभके अभावतें शौचधर्म प्रगट होय है, असत्य के अभावतें सत्यधर्म प्रगट होय है, कषायनिके अभावतें संयमगुण प्रगट होय है, इच्छाके अभावतें तपगुण प्रगट होय है। परमें ममता के अभावतें त्याग धर्म प्रगट होय है, परद्रव्यनितें भिन्न अपने आत्मानुभव होनेतें आकिंचन्यधर्म प्रगट होय है, वेदनिके अभावतें आत्मस्वरूपमें प्रवृत्तितें ब्रह्मचर्य धर्म प्रगट होय है।

यो दश प्रकार धर्म आत्माका स्वभाव है। यो धर्म किसातें मोल्या मुसैं नाहीं, लूट्या लुटै नाहीं, चोर चोरि सकै नाहीं, राजाका लूट्या लुटै नाहीं, स्वर्गमें परदेशमें सदा याका सम्प लूटैं नाहीं, किसीका बिगाड्या बिगडै नाहीं, धनकरि मोल आवै नाहीं, आकाशमें, पातालमें दिशानें, पहाडमें, जलमें, तीर्थमें, मन्दिरमें कहीं धरया नाहीं, आत्माका निज स्वभाव है। याका लाभ सम्यग्ज्ञान श्रद्धानतें होय है। अर एसा सुगम है जो बालक-वृद्ध-युवा, धनवान्-निर्धन, बलवान्-निर्बल, सहायसहित-असहाय, रोगी निरोगी समस्तके धारण करनेमें आवने योग्य स्वाधीन है।

धर्मके धारणमें कुछ खेद, क्लेश, अपमान, भय, विषाद, कलह, शोक, दु:ख कदाचित् नाहीं, दुर्लभ है नाहीं, बोझ उठावना नाहीं, दूरदेश जावना नाहीं, क्षुधा तृषा शीत उष्ण तांकी वेदनाका आवना नाहीं, किसीका विसम्वाद झगड़ा है नाहीं, अत्यन्त सुगम, समस्त क्लेश-दु:ख-रहित स्वाधीन आत्माका ही सत्य परिणमन है। यातैं समस्त संसार-परिभ्रमणतैं छूटि अनन्तज्ञान दर्शन सुख धारक सिद्ध अवस्था याका फल है।

ऐसे दश लक्षण धर्म का संक्षेपकरि वर्णन कियो।

